

Scan-21/1/200

३२५



प्रथम खण्ड

वैदिक सभ्यता

वेदों की प्राचीनता—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' की उक्ति प्रत्येक विचारवान व्यक्ति को वेदों के विषय में जानने के लिये उत्साहित करती है। क्योंकि वेदों की रचना किसने की और कब की, इसपर अनेक मतमतान्तर हैं। भारतीय संस्कृति से लालित-पालित-पोषित होने वाले विद्वान तो इन्हें 'अपौरुषेय' ही मानकर नतमस्तक हो जाते हैं और वेदमन्त्रों में ऋषियों के नाम देखकर इन्हें मन्त्ररचयिता मानने ाले मित्रों को वैदिकसंस्कृति के पोषकों का यही उत्तर होता है ि ऋषियों ने मन्त्रों को अपने तपोयोग से देखा था, रचा नहीं। किन्तु श्चात्य विद्वत्समाज वेदों को मानव-रचित मानता है। उसका कहना कि इनकी रचना आर्यों ने भारत में आकर की इससे पहले वेदों का ोई नाम न था। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि सर्वप्रथम र्यों ने भारत में आकर ऋग्वेद की रचना की। प्रसिद्ध दल ही न जैकोबी का मत है कि ऋग्वेद रचना काल ही समझे जा े। ई० पूर्व तक है, जबकि जर्मन विद्वा होता था। युद्ध में भाग लेने को १००० ई० पूर्व से हानि न होने पाती थी।

तीय विद्वान श्री

सामाजिक जीवन—घर में पिता ही सम्पूर्ण कुटुम्ब का कर्त्ता-धर्त्ता समझा जाता था और उसे घर के सञ्चालन का पूरा अधि था। वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। वृद्ध होने पर लोग अपने ज्येष्ठ पुत्र और बहू को घर का कार्य सौंपकर हरि भजन ही अपना जीवन लक्ष्य समझते थे। में आप

वैदिक सभ्यता जानने के स्रोत—(१) प्रत्येक वेद में मन्त्रों का संग्रह है, जो 'संहिता' के नाम से पुकारा जाता है। संहिता का अर्थ समझाने के लिये जिस गद्य भाग की रचना की गई वह 'ब्राह्मण' कहे जाते हैं। 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का एक विशेष भाग है, जो एकान्तवास में अध्ययन करने योग्य है, उसे 'अरण्यक' और जो भाग ईश्वर की चर्चा चलाता है उसे उपनिषद् संज्ञा दी गई है। (२) वेदाङ्ग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः वेद के अंग हैं। उपवेद—ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गांधर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र है। (३) पुराण १८ हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड और इसके अतिरिक्त १८ उप-पुराण भी हैं— (४) षड्दर्शन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त दर्शन एवं मन्वादि स्मृतियाँ वैदिक सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। इन्हीं को आधार शिला मान कर ही कोई इतिहासकार वैदिक सभ्यता का सच्चा खाका खींच सकता है, अन्यथा नहीं।

वैदिक सभ्यता के संस्थापकों का मूल स्थान—वैदिक सभ्यता के जन्मदाताओं की जन्मभूमि के बारे में विद्वत्समाज में बड़ा मत [illegible] (२) [illegible] विद्वान् इन्हें उत्तरी ध्रुव के निकट रहने वाले [illegible] जन्म स्थान मानते हैं। (३) भारतीय वि[illegible] [illegible] ही समझते हैं। (४) मध्य ए[illegible] [illegible] समर्थक आज अनेक वि[illegible] [illegible] विद्वानों [illegible]

जिसका पद प्रायः पैतृक समझा जाता था। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं, राजा चाहे पैतृक हो अथवा जनता द्वारा निर्वाचित, वह निरंकुश नहीं होता था। क्योंकि उसकी सहायता के लिये जनता द्वारा दो कौंसिलें होती थीं। एक कौंसिल 'सभा' और दूसरी 'समिति' के नाम से प्रसिद्ध थीं। लोगों पर किसी प्रकार का कर न था, जनता स्वयं अपनी इच्छा से राजा को उपहार स्वरूप धनराशि प्रदान करती थी। विजित जातियों से कर अवश्य लिया जाता था। राजा अपनी प्रजा का लालन-पालन-पोषण अपने तन-मन-धन से करता था, क्योंकि राज्याभिषेक काल में उसे ऐसा करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। राज्य के दण्ड और नियम बड़े कठोर थे। राजा न्यायालय में बैठकर स्वयं बड़े बड़े झगड़ों का फैसला किया करता था और युद्ध में सेनापति का कार्य भी करता था। गाँवों का प्रबन्ध पञ्चायतों के हाथ में था और गाँव का मुखिया ग्रामणी कहलाता था। इसके अतिरिक्त राजा की सहायता के लिये अनेक कर्मचारी थे, जिनमें पुरोहित, सेनानी और ग्रामणी अपना विशेष स्थान रखते थे।

वैदिक कालीन युद्ध प्रणाली बड़ी उत्तम थी। किसी शस्त्रहीन, सोये हुए या घायल पर शस्त्र चलाना महा पाप समझा जाता था। विषैले बाण आदि शस्त्रों का प्रयोग वर्जित था। अधिकारी लोग प्रायः रथों पर बैठकर युद्ध करते थे, किन्तु साधारण सेना पैदल ही लड़ाई के मुख्य शस्त्र केवल धनुष, भाले, कुल्हाड़ी ही समझे जाते थे। युद्ध शहर के बाहर समराङ्गनों में ही होता था। युद्ध में भाग लेने वालों को किसी प्रकार की हानि न होने पाती थी।

(२) सामाजिक जीवन—घर में पिता ही सम्पूर्ण कुटुम्ब का कर्त्ता-धर्त्ता समझा जाता था और उसे घर के सञ्चालन का पूरा अधिकार था। वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। वृद्ध होने पर लोग अपने ज्येष्ठ पुत्र और बहू को घर का कार्य सौंपकर ईश्वर भजन ही अपना जीवन लक्ष्य समझते थे। में आप

में दहेज प्रथा बिलकुल न थी, किन्तु कन्या को यथाशक्ति कुछ न कुछ अवश्य दिया जाता था। आर्यों के घर बड़े स्वच्छ और हवादार होते थे। आचार-विचार की पवित्रता को बड़ा महत्त्व दिया जाता था, कहा भी है 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'।

स्त्री की पदवी—वैदिक समाज में स्त्रियों का बड़ा आदर होता था। कोई पुरुष अपनी अर्द्धांगिनी के सहयोग के बिना किसी यज्ञ आदि पुण्य कार्य को नहीं कर सकता था। पर्दा प्रथा का कहीं नाम तक न था। शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार स्त्रियों को पुरुषों के समान ही था। साधारणतः पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करता था। किन्तु बड़े-बड़े राजा महाराजा और उनके अधिकारी एक से अधिक विवाह भी करते थे। बाल-विवाह की प्रथा पूर्णरूप से अवैधानिक समझी जाती थी। स्त्रियों का चरित्र बड़ा पवित्र और ऊँचा था। यही कारण था कि स्त्रियों ने भी मन्त्रद्रष्टा की उपाधि प्राप्त की, जिसमें अपाला, लोपामुद्रा, घोषा आदि का नाम लिया जा सकता है। वैदिक काल में स्त्रीसमाज कितना आदरणीय था, यह तो इस वैदिक मन्त्र से ही सिद्ध होता है 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'।

खान-पान एवं वेशभूषा—वैदिककाल के लोग बड़ा सादा जन करते थे। दूध, दही, मक्खन, घी, रोटी, चावल, फल एवं कारियों को ही अपने भोजन में प्रधानता देते थे। कुछ लोग भी खाते थे। वे सोमरस का पान करते थे, जो उन्हें अत्यधिक था। इन लोगों की वेश-भूषा बड़ी सादी थी। केवल दो ऊनी या सूती वस्त्र ही उनके शरीर रक्षा के लिये पर्याप्त समझे थे। दाढ़ी रखने का शौक प्रायः सबको था। स्त्री-पुरुष दोनों ण धारण करते थे, जो प्रायः चान्दी और सोने के ही होते थे।

यवसाय तथा आमोद-प्रमोद—इस समय के लोगों का मुख्य य कृषि कार्य था। कृषि की सिंचाई के लिये नहरों और

कूओं का समुचित प्रबन्ध था। बड़े-बड़े खेत प्रायः गेहूं और जौ के होते थे। किन्तु कपास और सरसों की उपज भी आवश्यकता के लिये कर ली जाती थी। पशुपालन पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। गोधन उस समय का सर्वोत्तम धन समझा जाता था। कपड़ा बुनना, सोने-चाँदी के आभूषण बनाना, मकान बनाना एवं लकड़ी के कार्यों में भी ये लोग पर्याप्त उन्नति कर चुके थे। आमोद-प्रमोद में ये लोग गाने-बजाने को विशेष महत्त्व देते थे। प्रत्येक प्रकार के वाद्य ये लोग अच्छी तरह बजाना जानते थे। शिकार खेलकर, एक दूसरे के मुकाबले में रथ दौड़ाकर भी ये अपना मनो-विनोद करते थे।

धार्मिक व्यवस्था—वैदिक सभ्यता के स्रोतों से यह भली प्रकार विदित होता है कि वैदिक सभ्यता के लोगों का धर्म बड़ा सरल था। ये लोग प्रकृति के अनन्य भक्त थे। यही कारण था कि उस समय के लोगों ने सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि और वरुण आदि देवताओं की पूजा की और उनसे मनवांछित फल प्राप्त किये। ये लोग इस प्रकार देवताओं की संख्या ३३ मानते थे। किन्तु इन देवताओं के अतिरिक्त भी कोई शक्ति है जो सारे विश्व का सञ्चालन करती है, ऐसा उनका विश्वास था, जिसे वे लोग ईश्वर के नाम से जानते थे।

पुनर्जन्म में विश्वास—आज की तरह उस समय के लोगों का भी विश्वास था कि इस पार्थिव शरीर के बाद भी कोई ऐसी शक्ति है जो अजर और अमर है, जिसे यमलोक और स्वर्गलोक का भ्रमण करना पड़ता है। इस शक्ति को वे आजकल की तरह आत्मा कहते थे, जो सदैव एक शरीर को छोड़कर दूसरे का आश्रय लिया करती है।

अभ्यास

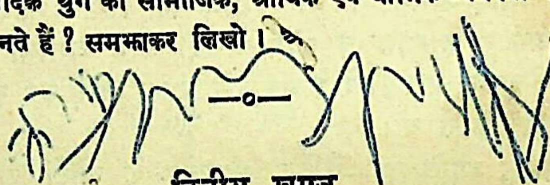
[क] वेदों की प्राचीनता में लिये गये मतमतान्तरों के विषय में आप क्या जानते हैं? विस्तारपूर्वक लिखो।

[ख] वैदिक सभ्यता के ज्ञान स्रोतों से आप क्या समझते हैं ? सुस्पष्ट शब्दों में उत्तर दीजिये।

[ग] वैदिक संस्कृति के संस्थापकों की जन्मभूमि के विषय में दिये गये मतों से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

[घ] वैदिक आर्यों के शासन और युद्ध-प्रणाली कैसी थी ? संक्षेप पूर्वक उत्तर दो।

[ङ] वैदिक युग की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था के बारे में आप क्या जानते हैं ? समझाकर लिखो।



—०—

द्वितीय खण्ड

सिन्धुघाटी की सभ्यता की विशेषताएं

सिन्धुघाटी की सभ्यता—मानव सभ्यता अपने चिह्न छोड़ती जाती है। मानव ने शुरू में हड्डी, पत्थर और लकड़ी के हथियार निर्माण किये। धीरे-धीरे उसे धातुओं का ज्ञान हुआ, जिन्हें उसने खोदना और साफ करना प्रारम्भ किया। इसके बाद उन धातुओं से शस्त्रास्त्र बनाये गये। इस प्रकार मानव सभ्यता की अनेक सीढ़ियाँ हैं, जिनका ज्ञान हमें प्राचीन काल की वस्तुओं से ज्ञात होता है। आज से कुछ वर्ष पूर्व हमें अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिये वेदों का ही आश्रय लेना पड़ता था। किन्तु इधर सन् १९२०-२२ में भारत के पुरातत्त्व विभाग ने पञ्जाब तथा सिन्ध प्रान्तों की खुदाई से एक अतीव पुरानी सभ्यता का पता लगाया है। सन् १९२०-२१ में पुरातत्त्व विभाग के डायरेक्टर जनरल सर जान मार्शल की आज्ञा से श्रीयुत दयाराम साहनी ने पञ्जाब के हड़प्पा नामक स्थान पर खुदाई करवाई। फलस्वरूप उन्हें अनेक प्राचीन मोहरें मिलीं

इसके बाद सन् १९२१-२२ में स्वर्गीय डाक्टर राखालदास बनर्जी ने सिन्ध के लरकाना जिले में मोहिंजोदड़ो स्थान पर खुदाई आरम्भ की। भारतीय पुरातत्त्व विभाग के कई वर्षों के दीर्घ प्रयास का फल है कि उपरोक्त स्थानों के खण्डहर अपनी प्राचीनता की गवाही देते हुए आज हमारे सामने हैं। पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों का कहना है कि हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त वस्तुयें पूर्णरूप से मोहिंजोदड़ो से मिलती-जुलती है। इसके अतिरिक्त अम्बाले जिले में रोपड़ नगर के समीप 'काटला निहङ्ग' ग्राम में और बिलोचिस्तान के 'नाल' ग्राम में भी वस्तुयें मिली हैं, जो हड़प्पा और मोहिंजोदड़ो की वस्तुओं से मिलती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सभ्यता बड़ी विस्तृत थी। इस सभ्यता को सिन्धुघाटी की सभ्यता के नाम से पुकारा जाता है, जिसकी मुख्य-मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है—

विशाल स्नानगृह—मोहिंजोदड़ों की खुदाई में एक स्नानागार मिला है, जिसकी लम्बाई ३९ फीट, चौड़ाई २३ फीट और गहराई ८ फीट बताई जाती है। इसकी दिवारें ऐसे मसाले से बनाई गई हैं, जिन पर पानी का कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता और भी अनेक स्नानागार हैं, जिनके निरीक्षण से पता चलता है कि वे किसी युग में अपना अद्वितीय स्थान रखते थे। स्नानागारों में स्वच्छ पानी के आने और गन्दे पानी के निकास का उचित प्रबन्ध दृष्टिगोचर होता है।

भवन निर्माण—रहने के भवनों और राजकीय कार्यालयों का निर्माण बड़ी विधि से किया जाता था। एक भवन मिला है जो उत्तर से दक्षिण तक १६८ फीट और पश्चिम से पूर्व १३६ फीट है। इसके बीच में एक बड़ा हाल भी है। लोगों का विचार है कि यह भवन सार्वजनिक सभा आदि के लिये रहा होगा। भवन निर्माण करते समय इसकी नींव खूब मजबूत बनाई जाती थी। प्रत्येक घर में हवा और रोशनी आने के लिये उचित व्यवस्था थी। इसमें सन्देह

नहीं कि सिन्धुघाटी कीं सभ्यता उच्चनागरिकों की सभ्यता थी। लोग भवन-निर्माण-विधि से सम्यक्तया परिचित थे, यह उनके टूटे-फूटे खण्डहरों से अनुमान लगाया जा सकता है।

शासन-प्रणाली—सिन्धुघाटी के निवासियों के शासन विधान का अनुमान केवल उनकी नगरनिर्माण आदि योजनाओं से ही लगाया जा सकता है। क्योंकि शासन की सतर्कता आदि गुणों के अभाव में कोई भी देश इस प्रकार की उन्नत और श्रेष्ठ वस्तुओं का निर्माण नहीं कर सकता। सम्भवतः आज-कल की तरह नगरपालिकायें और जिला बोर्ड स्थानीय शासन की देखभाल करते थे।

आर्थिक व्यवस्था—खुदाई की वस्तुओं से ज्ञात होता है कि उस समय के लोगों की आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। आर्थिक अवस्था अच्छा बनाये रखने के लिये कृषि के साथ लोग पशुपालन भी करते थे। उस समय के पालतू पशु मुख्यतः गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, बकरी आदि थे। कपड़ा बुनने का सामान, वस्तु के तोलने के बाट आदि मिले हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि ये लोग दस्तकारी एवं व्यापार में भी पर्याप्त कुशल थे।

धार्मिक व्यवस्था—अब तक कोई ऐसी चीज नहीं उपलब्ध हुई जिसके आधार पर ठीक सिन्धुघाटी की सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था का हाल लिखा जा सके। परन्तु धर्म के बारे में अवश्य कुछ प्रमाण मिले हैं। हड़प्पा और मोहिंजोदड़ों से प्राप्त मिट्टी की अनेक मूर्त्तियों से यह निश्चय होता है कि वे लोग माता के रूप में प्रकृति की उपासना करते थे, जो बाद में जगदम्बा और शक्ति के नाम से आज तक पूजी जाती है। इसके अतिरिक्त एक ऐसी मुद्रा मिली है, जिसके चारों ओर हाथी, चीता, गैंडा और भैंसा बने हुए हैं और बीच में एक त्रिमुख योगी स्थित है। लोगों का अनुमान है वे पशुपति कीं पूजा करते थे, जो बाद में 'शिव' के नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ भग्न अवशेष भी ऐसे उपलब्ध हुए हैं,

इनका सम्बन्ध शैवधर्म से है। अतः कहा जा सकता है कि उस समुदाय के लोगों के साथ आज के भारतीय हिन्दुओं का धर्म मिलता-जुलता है, विशेषतः 'शिव' और 'माता' की उपासना में तो पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है।

वेषभूषा एवं मनोरञ्जन—खुदाई से अनेक घरों में चर्खों की पिंडलियाँ भी मिली हैं, जिनसे मालूम होता है कि उस समय घर-घर में चर्खे का प्रचलन था। पुरुषों का पहरावा एकदम सादा था। वे केवल एक धोती पहनते थे और एक दुशाला डालते थे, जो बाँये कन्धे के ऊपर से होकर दाहिने कन्धे के नीचे आ जाता था, इससे उनका दाहिना हाथ बिलकुल खुला रहता था। मनुष्यों में कुछ तो मूँछें मुड़ाते थे और कुछ नहीं किन्तु छोटी दाढ़ी प्रायः सब लोग रखते थे। स्त्रियों का पहरावा पुरुषों से भिन्न था। अभाग्य वश केवल एक ही बड़ी स्त्री की मूर्त्ति मिली है जिसके बाल बँधे हुये नहीं अर्थात् खुले हुए हैं, किन्तु इससे यह अनुमान लगाना कठिन है कि बाल खुले रखने की रीति थी या नहीं। जेवर पहनने का स्त्री-पुरुष दोनों को शौक था। स्त्रियाँ प्रायः कान में बाली, हाथ पर चूड़ी, कमर पर कधँनी और पैरों में नूपुर पहनती थीं। किन्तु धनिक लोक सोने-चाँदी के अलंकारों से अपने को अलंकृत करते थे।

मनोरंजन के लिये ये लोग प्रायः एक स्थान पर एकत्र होकर खूब गाते बजाते थे। जुआ और शतरंज खेलने का भी उन्हें शौक था ऐसे प्रमाण मिले हैं। शिकार खेलना एवं मनोविनोद के लिये बड़े बड़े मेले और उत्सवों का आयोजन करने में उनकी पर्याप्त रुचि थी।

कलासम्बन्धी विशेषता—कला के क्षेत्र में सिन्धुघाटी की सभ्यता ने पर्याप्त यश प्राप्त किया था। क्योंकि उस काल की बनी मूर्त्तियाँ आज भी मानव को चकित सी कर देती हैं। उस समय की कला में यह विशेषता थी कि वस्तुयें बाहरी आडम्बर के लिये नहीं, वास्तविकता के लिये निर्मित की जाती थीं। लोग लेखन

कला से भी भली प्रकार परिचित थे। उनके लिखने की ढंग दाँईं ओर से बाईं ओर थी। भवन निर्माण कला जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है सचमुच अपना एक विशेष महत्व रखती थी।

अभ्यास

[क] सन् १९२०-२२ तक की गई खुदाई के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में वर्णन करो।

[ख] सिन्धु घाटी की सभ्यता के चिन्ह कहाँ-कहाँ से मिले लिखकर उनके अन्वेषकों के बारे में संक्षिप्त नोट लिखो।

[ग] सिन्धुघाटी की मुख्य-मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालो।

[घ] 'सिन्धुघाटी की सभ्यता प्रत्येक भारतीय के लिये गौरव की वस्तु है' इस उक्ति को सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

—o—

तृतीय खण्ड

रामायण और महाभारतकाल की सभ्यता

रामायण और महाभारत का महत्त्व—रामायण के निर्माता महर्षि वाल्मीकि संस्कृत साहित्य में आदि कवि पुकारे जाते हैं। हमारे यह आदि कवि पहले डाकुओं की संगति में पड़कर डाका डाला करते थे ऐसा कहा जाता है। किन्तु एक महर्षि के उपदेश का प्रभाव इन पर ऐसा पड़ा कि इन्होंने डाका डालना छोड़कर घोर तप किया, फलस्वरूप इन्हें कविताशक्ति प्राप्त हुई। रामायण केवल ऐतिहासिक ग्रन्थ ही नहीं महाकाव्य भी है। वाल्मीकिजी ने अपने ग्रन्थ में पात्रों का चरित्र-चित्रण ऐसे ढंग से किया है, जिसे पढ़कर लोगों को आज भी बड़ा आश्चर्य होता है। रामायण में प्रधान त

…र पाँच राज्यों का वर्णन है। रामायण में अयोध्या के सूर्यवंशी राजा दशरथ तथा उनके सुपुत्र भगवान् राम के कार्यों का विशद वर्णन है। रामायण की रचना किस युग में हुई, निश्चय रूप में …ह नहीं कहा जा सकता। शास्त्रीयमत के अनुसार कम से कम दस लाख वर्ष पहले इसका रचना काल है, किन्तु पाश्चात्य विद्वान इस काल को ५०० वर्ष ई० पूर्व से २०० वर्ष ई० पू० से अधिक नहीं मानते। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म आदि अन्य …ई रामायणें हैं, जिनके आधार पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने १६वीं शताब्दी में रामचरित मानस की रचना की। आज उत्तर भारत… सम्भवतः कोई ऐसा हिन्दू होगा जिसे रामायण की एक दो चौपाई …द न हों। रामायण उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

महाभारत की रचना रामायण के बाद हुई, जिसके रचयिता महर्षि वेदव्यासजी थे। इसमें कौरवों और पाण्डवों की लड़ाई का विशद वर्णन है, रामायण की तरह यह भी एक महाकाव्य है। …ह ग्रन्थ इतना आदरणीय है कि लोग इसे पंचमवेद कहने लगे हैं। …श्व में सम्भवतः यह सबसे बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें १ लाख श्लोक …। गीता इसी के अन्तर्गत आ जाती है। युधिष्ठिर की सत्य-…ादिता एवं धार्मिकता, अर्जुन का रणकौशल, भीष्म की दृढ़ प्रतिज्ञा, …ान्धारी का पातिव्रत्य, दुर्योधन की हठवादिता एवं दुश्शासन की …ठोरता का मार्मिक चित्रण पाठकों को जो इस ग्रन्थ में मिलता … शायद ही वैसा कहीं मिलता हो। भारतीय इतिहासकारों का मत … कि महाभारत की लड़ाई ईसा से तीन या चार हजार वर्ष पहले …, किन्तु पश्चिमी विद्वान इस काल को ईसा से कुछ सौ वर्ष ही पूर्व …नते हैं।

उपरोक्त दोनों ग्रन्थ अपने-अपने युग का अच्छा प्रतिनिधित्व …ते हैं। रामायण और महाभारत काल की सभ्यता पर विचार

करने से पूर्व इनका कथासार जानना आवश्यक है। अतः यहां कथासार दिया जाता है।

रामायण की कथा—अत्यन्त प्राचीनकाल में उत्तर भारत में कौशल नाम का एक राज्य था जिसकी राजधानी अयोध्या नगरी थी। सूर्यवंशी राजा दशरथ वहाँ राज्य करते थे। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। किन्तु राजा दशरथ की राज्य सामग्री भोगने वाला कोई उत्तराधिकारी न था, अतः उन्हें सदैव पुत्रोत्पत्ति की चिन्ता बनी रहती थी। पुत्रेष्टी यज्ञ कराने के फलस्वरूप कौशल्या के गर्भ से श्रीरामचन्द्र, सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयी के भरत का जन्म हुआ। इनमें रामचन्द्रजी बड़े थे और सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण सबके प्रिय भी थे।

रामचन्द्रजी का विवाह स्वयम्बर में धनुष तोड़ने पर विदेह के राजा जनक की रूपवती कन्या सीता से हुआ। जब राजा दशरथ वृद्ध हुए तो उन्होंने रामचन्द्रजी को युवराज बनाना चाहा। किन्तु कहा है 'मानुष्य के मन और है साईं के कछु और'। यह समाचार मन्थरा द्वारा कैकेयी के पास पहुँचते ही वह आगबबूला हो गई क्योंकि वह अपने पुत्र भरत को ही राज्यपद दिलाना चाहती थी। इसलिये उसने राजा दशरथ से अपने दो वर मांगे जिन्हें कभी राजा ने देने की प्रतिज्ञा की थी। 'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं बरु बचन न जाई ॥' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले दशरथ से कैकेयी ने भरत के लिये राज्य और रामचन्द्र के लिये १४ वर्ष का वनवास मांगा। दशरथ के लिये अपने स्नेही पुत्र राम को वन भेजना अति कठिन था, किन्तु भगवान् राम ने पिता की प्रतिज्ञा चरितार्थ करने के लिये स्वयं लक्ष्मण और सीता के साथ वन का रास्ता लिया। पीछे राजा दशरथ भी हाय राम! हाय राम! कहते कैलाश वासी हुए।

भरत इन दिनों अपने नाना के यहाँ थे। अयोध्या में लौटते ही भरत ने 'किं कर्त्तव्यविमूढ़ता' में न जाने माता को कितनी खरीखोटी सुनाई और राज्य लेने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् भरतजी अपने साथ अन्य मित्रों को लेकर भगवान् राम को मनाने के लिये चित्रकूट पहुँचे और अयोध्या लौटने की प्रार्थना की। किन्तु भगवान् राम ने उन्हें अच्छी तरह समझा बुझाकर अयोध्या का राज्य-पाट १४ वर्ष तक देखने की आज्ञा दी। भरत ने भगवान् राम की पादुकाओं राज्यगद्दी पर रखकर राज्य का काम देखना आरम्भ किया।

बनवास में १३ वर्ष सुख से यापन करने पर १४वें वर्ष भगवती सीता को लंका का राजा रावण पंचवटी से छलकर ले गया। भगवान् राम और लक्ष्मण जब स्थान पर लौटे तो उन्होंने सीता की अनुपस्थिति पर महान् शोक प्रकट किया। रामचन्द्रजी ने किष्किन्धा के राजा सुग्रीव और हनुमानजी की सहायता से लंका पर चढ़ाई कर दी। रावण का छोटा भाई विभीषण भी भगवान् राम की शरण में आ गया। कुछ दिनों के युद्ध के बाद रावण धराशायी हुआ। वह दिन देवताओं के लिये महान् प्रसन्नता का दिन था। क्योंकि वह पहला अवसर था जब दानवता पर मानवता ने चिर-काल के बाद विजय पाई थी। रावण के मरते ही भगवान् राम ने लंका का राज्य विभीषण को सौंप दिया। चौदह वर्ष के दीर्घ वन-वास के बाद भगवान् राम, लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या लौट आये। जनता ने उस आगमन पर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। इसके पश्चात् रामचन्द्रजी चिरकाल तक उत्तम रीति से राज्य करते रहे। तुलसीदासजी ने कहा भी है 'दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहू नहीं व्यापा ॥' रामचन्द्रजी के दो सुपुत्र लव और कुश थे, जिन्होंने लाहौर और कसूर की नींव डाली।

महाभारत की कथा—महाभारत में कौरव और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन है। प्राचीन काल में वर्तमान देहली नगर से कोई

६० मील उत्तर पूर्व की ओर हस्तिनापुर नाम का राज्य था। यह चन्द्रवंशीय एक राजा शन्तनु राज्य करता था। उसके दो पुत्र भीष्म और विचित्रवीर्य थे। भीष्म बड़े थे किन्तु उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि न तो मैं विवाह करूँगा और न ही राज्यगद्दी पर बैठूँगा। भीष्म जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे और महाभारत के युद्ध में उनका बहुत बड़ा हाथ था। शान्तनु के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनका छोटा लड़का विचित्रवीर्य राजसिंहासन का उत्तराधिकारी हुआ।

विचित्रवीर्य के भी दो पुत्र थे—बड़े का नाम धृतराष्ट्र और छोटे का नाम पाण्डु था। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे अतः विचित्र वीर्य की मृत्यु के बाद राजगद्दी पर पाण्डु बैठा। उसके पाँच पुत्र थे जिनका नाम युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, और सहदेव था। ये सब पाण्डव कहलाते थे। पाण्डु की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र मन्त्रियों के सहयोग से राज्यपाट करने लगा। इन्हें १०० पुत्र थे जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। धृतराष्ट्र की सन्तान कौरव कहलाती थी। कौरव पाण्डु की सन्तान से सदैव ईर्षा तथा शत्रुता का बर्ताव करते थे।

धृतराष्ट्र ने लोकाचार की दृष्टि से युधिष्ठिर को ही अपना युवराज नियत किया। इस पर कौरवों को बड़ा दुःख हुआ, विशेष कर दुर्योधन को। दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ अनेक अन्याय किये किन्तु 'जाको राखे साईयाँ मार सके नहीं कोय, बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय' की उक्ति वहाँ पूर्णरूप से चरितार्थ हुई। अपने पुत्रों के कथन पर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को देश से निकाल दिया। इस देश निर्वासन पर पाण्डव पाँचाल देश पहुंचे। वहाँ पांचाल नरेश द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का स्वयंवर हो रहा था। अर्जुन ने स्वयंवर की शर्तों को पूरा किया और द्रौपदी का विवाह विधि विधान से उसके साथ सम्पन्न किया गया।

पांचाल नरेश से सम्बन्ध हो जाने पर पाण्डवों की शक्ति बढ़ गई, फलतः उन्होंने अपना आधा राज्य कौरवों से माँगा। कौरवों ने अपने राज्य का ऊसर भाग उन्हें प्रदान किया। इसके बाद पाण्डवों ने अपने अगाध परिश्रम से उस ऊसर भाग को कुछ ही दिनों में सुन्दर बना लिया और वहाँ इन्द्रप्रस्थ नामक नगर की स्थापना की। पाण्डवों की यह उन्नति देखकर दुर्योधन जलने लगा। मौका पाकर दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिये उद्यत कर लिया। इस खेल में दुर्योधन ने अपने मामा शकुनी का सहयोग लिया फलतः युधिष्ठिर सब कुछ हार गया। अन्तिम बार 'विनाशकाले विपरीतबुद्धि' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए, युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी बाजी में रख दिया और एक शर्त से १३ वर्ष बन भी जाना स्वीकार कर लिया। इस अवधि के समाप्त होते ही पाण्डवों ने अपना राज्य माँगा यहाँ तक कि भगवान कृष्ण भी दुर्योधन को समझाने गये। किन्तु दुर्योधन ने भगवान कृष्ण को साफ-साफ शब्दों में कहा 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव'। इस निषेध पर पाण्डवों और कौरवों का कुरुक्षेत्र के मैदान में एक रक्तपूर्ण युद्ध हुआ, जिसमें भारतवर्ष के सम्पूर्ण राजाओं ने किसी न किसी पक्ष का समर्थन किया। भगवान कृष्ण पाण्डवों की ओर थे, किन्तु उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे शस्त्र न उठायेंगे। यह भयानक युद्ध १८ दिन तक चला। इसी युद्ध में गीता का उपदेश अर्जुन को भगवान कृष्ण ने दिया। अन्ततोगत्वा 'यतो धर्मस्ततो जयः' की उक्ति चरितार्थ हुई और पाण्डवों ने राज्य सिंहासन पर पदार्पण किया। युधिष्ठिर ने बड़ी उत्तम रीति से हस्तिनापुर का राज्य वर्षों तक किया, फिर अर्जुन के पोते को राज्य देकर अपने भाइयों सहित स्वर्गारोहणार्थ हिमालय की ओर चले गये।

रामायण और महाभारत की सामाजिक अवस्था—इस समय जात-पात बड़ी दृढ़ता से स्थापित हो चुकी थी और

ब्राह्मणों को बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता था। राजा
के प्रधान सचिव पद को प्रायः वे ही ब्राह्मण सुशोभित करते थे, जिन
वेदवेदाङ्गों में पूरा ज्ञान था। वर्ण आश्रम व्यवस्था को महत्त्व
दिया जाता था। अधिकांश लोग आज की भाँति गाँवों में
निवास करते थे। पशु पालन और कृषि को लोग सर्वोप
स्थान देते थे। धनिक व्यापारी लोग प्रायः नगरों में रहते थे
बाल विवाह अपराध समझा जाता था। स्त्रियों को स्वतन्त्र
थी कि वह शिक्षा प्राप्त कर सकें। उच्च राजवंशों की लड़कि
विवाह के समय अपना वर स्वयं चुन सकती थीं। इस रीति
'स्वयंवर' कहते थे। शिक्षा पर विशेष महत्त्व दिया जाता था
इस समय ऋषि कुलों की प्रणाली अपनी चरम सीमा पर थी
वेदवेदाङ्गों का अध्ययन द्विज जातियों को करने का अधिकार था
राजनीति में पदार्पण करने के इच्छुक राजकुमारों के लिये धनु
के योग्य अध्यापक रखे जाते थे। वेश-भूषा अपने प्राचीन
को छोड़ कुछ आधुनिक ढंग की ओर बढ़ चली थी। खान-पा
बड़ा सादा था। लोग 'अहिंसा परमो धर्मः' को अपने जीवन
चरितार्थ करते थे। जनता भोजन में घी, दूध, दही, माख
पकान्न आदि को ही महत्त्व देती थी। मनो-विनोद के लिये
लोग शिकार भी करते थे। नृत्य-गीत-वाद्य का प्रयोग विव
आदि उत्सवों पर दिल खोलकर किया जाता था।

धार्मिक-अवस्था—इस समय लोग धर्म में वैदिक काल
उत्तम और श्रेष्ठ सरलता छोड़ चुके थे। प्राकृतिक दृश्यों की
छोड़ लोगों ने अपनी सुविधा के लिये उन दृश्यों की कल्पना ब्र
विष्णु, महेश आदि में कर ली थी, अर्थात् देवी-देवताओं की
करने लगे थे, ऐसा कहा जाता है। अवतारवाद में लोगों का
विश्वास था। वैदिक काल की तरह लोग पुनर्जन्म में आस्था र
थे। मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्राह्मण लोग वनों में घोर तपस्या करते

संस्कार इतने कठिन और पेचीदा हो गये थे कि सर्वसाधारण पुरोहित के लिये 'टेढ़ी खीर' थे। यही कारण था, रामायण और महाभारत की सभ्यता ने हमें वाल्मीकि और वेदव्यास जैसे त्रिकालदर्शी विद्वान् दिये।

राजनैतिक अवस्था—वैदिक काल की कुटुम्ब प्रणाली ने अब साम्राज्य का रूप धारण कर लिया था। महाभारत में कई साम्राज्यों का वर्णन आता है, जैसे कुरु, पांचाल, कोशल, हस्तिनापुर, मथुरा, काशी, अंग, विदेह आदि। इन साम्राज्यों के साथ-साथ कई प्रजातन्त्र भी थे। राजा का पद प्रायः पैतृक हो गया था। राजा के अधिकारों में पर्याप्त वृद्धि थी। 'सभा' और 'समिति' का वैसा प्रभाव न था जैसे वैदिककाल में कभी था। फिर भी युवराज को राजगद्दी देने से पहले प्रजा की सम्मति अवश्य ली जाती थी। राज्याभिषेक के समय राजा को प्रजा की पुत्रवत् रक्षा करने की शपथ लेनी पड़ती थी, जिसका उसे पालन करना पड़ता था। अन्यथा गद्दी से उतार दिया जाता था। आय का मुख्य स्रोत कृषि-कर था, जो कृषि की उपज का १/६ होता था। इसे कृषक अन्न के रूप में या धनराशि के रूप में भुगतान कर सकता था। इस काल में सैनिक प्रायः क्षत्रिय होते थे और शेष कार्यों की पूर्ति अन्य लोग करते थे। सेना के चार भाग थे (१) अश्वारोही (२) गजारोही (३) रथारोही (४) पदाति, अर्थात् पैदल लड़ने वाले। सैनिकों के वेतन, चिकित्सा एवं पेंशन का समुचित प्रबन्ध था।

आर्थिक अवस्था एवं कलाकौशल—इस समय आर्थिक अवस्था पर्याप्त अच्छी थी। कृषि की उपज बढ़ाने के लिये सिंचाई का कार्य नदी, नहरों कुँओं से लिया जाता था, जिससे भूमि धन-धान्य के साधनों से पूर्ण रहती थी। खनिज पदार्थों की भी भरमार थी। कला-कौशल आर्थिक उन्नति में पर्याप्त सहायक

था। व्यापार के लिये हमारे देश के व्यापारी देश-देशान्तरों ... भ्रमण किया करते थे। युधिष्ठिर का महल महाभारतकाल ... कारीगरी का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है कि एक कारीगर ने ऐसा महल बनाया जिसे देख दुर्योधन जैसे सम्राट् भी न पहचान सका ... यह दरवाजा नहीं दीवार है। इसी प्रकार जल-स्थल ... पहचान करना भी उसके लिये कठिन था। समुद्र पर पुल निर्माण करनेवाले नल-नील इसी सभ्यता की देन है।

अभ्यास

[क] रामायण के महत्त्व पर एक निबन्ध लिखिये (१९५५ ... पूछा गया है।)

[ख] रामायण और महाभारत की कथा संक्षेप में लिखो।

[ग] रामायण और महाभारत के आधार पर भगवान रामचन्द्र ... भगवान कृष्ण का चरित्र चित्रण कीजिये।

[घ] रामायण और महाभारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक ... धार्मिक सभ्यता पर नोट लिखो।

[ङ] रामायण और महाभारत के निर्माताओं के जीवनचरित्र पर सं... प्रकाश डालिये।

[च] 'महाभारत पञ्चम वेद है' इस उक्ति से आप कहाँ तक सह... हैं ? स्वेच्छापूर्वक उत्तर दो।

—o—

चतुर्थ खंड

भगवान बुद्ध और वर्धमान महावीर

संसार का माना हुआ यह सिद्धान्त है कि 'परिस्थितियाँ ... पुरुषों को जन्म देती हैं'। भगवान कृष्ण ने भी गीता में ... कहा है 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्म...

तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥' अतः उपरोक्त महान् विभूतियों के समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियों का ज्ञान इससे पूर्व कर लेना आवश्यक है कि उनका व्यक्तिगत जीवन क्या थां। अतः पहले हम परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

सामाजिक अवस्था—चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अपने कर्त्तव्यों को छोड़कर दूसरे के कार्य में भी हाथ बटाने लगे थे। वर्णों के अतिरिक्त अनेक जातियाँ बन गई थीं, जो स्वेच्छा-पूर्वक व्यवसाय करती थीं। शूद्रों के साथ वैदिककाल जैसा तो नहीं फिर भी अच्छा बर्ताव था। गान्धर्व विवाह एवं स्वयम्वर की प्रथा चालू थी। वर्णोतर में भी विवाह आदि सम्बन्ध होने लगे थे। लड़के और लड़कियों की शिक्षा पर बराबर ध्यान दिया जाता था। किन्तु दोनों की शिक्षा का कार्यक्षेत्र पूर्णरूप से पृथक् था। लड़कियों को गृहविज्ञान—सीना, पिरोना का ज्ञान उत्तम रीति से कराया जाता था। बाल-विवाह और पर्दा की प्रथा बिलकुल न थी। स्त्री समाज का आदर पूर्ववत् बना हुआ था।

राजनैतिक अवस्था—जाति प्रथा के प्रभाव से लोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थाई रूप में रहने लगे और अपने निवास स्थान को 'जनपद' के नाम से पुकारते थे। तत्कालीन ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय कई जनपद थे, जिनमें मुख्य ये हैं—चेदी, मगध, काशी, पांचाल, शूरसेन, वत्स, कुरु, गान्धार, अवन्ति, कम्बोज, मत्स्य, अङ्ग एवं मल्ल। कहीं-कहीं गणतन्त्र प्रणाली भी प्रचलित थी, जैसे—लिच्छिवि, विदेह, शाक्य और मल्ल का नाम ही विशेष रूप में लिया जा सकता है। उपरोक्त गणतन्त्रों में कभी कभी युद्ध छिड़ जाता था, जिसमें असंख्य लोग मृत्यु के घाट उतार दिये जाते थे।

धार्मिक अवस्था—इस समय धर्म के नियम कुछ कठोर हो गये थे। यज्ञ विधि पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। बड़े बड़े

यज्ञों में निरपराध पशुओं की बलि होती थी, जिसे देखकर कोमल हृदयवाले लोग यज्ञ आदि को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे।

आर्थिक अवस्था—इस युग में लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी, कोई कंगाल न था। कृषिकार्य में कृषक ही एकमात्र अपना अधिकार समझता था। किन्तु ग्रामपञ्चायत की आज्ञा बिना वह अपना खेत बेच न सकता था। खेतों की सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध था। फलतः खेत सदैव धन-धान्य से लहलहाते रहते थे। गृह-उद्योग धन्धों की हालत बहुत अच्छी थी। घर स्त्रियाँ चरखा काता करती थीं।

उपरोक्त धर्म आदि के बन्धन और युद्धों की हिंसा ने भगवान बुद्ध और महावीर को जन्म दिया और इन लोगों ने जनता अपने अनुकूल बनाने के लिये प्रचलित दोषों का विरोध किया यही कारण था कि इन विभूतियों को पर्याप्त सफलता मिली। यह युग एक धर्म-सुधारकों का युग कहलाता है। भारत में भगवान बुद्ध और वर्धमान महावीर, यूनान में हिराक्लिटस, ईरान में जरथुस्त्र और चीन में कनफ्यूशस आदि ने धर्म सुधार की धूम मचा दी थी यही कारण है कि ई० छठी शताब्दी संसार में अपना एक विशेष महत्व रखती है।

वर्धमान महावीर का जीवन चरित्र—जैन धर्म, बौद्ध धर्म की अपेक्षा प्राचीन है, यह मत प्रायः आज मान्य हो गया है। वर्धमान महावीर जैनमत के संचालक और चौबीसवें तीर्थंकर माने जाते हैं। इनका जन्म वैशाली नगरी के पास कुण्डग्राम में हुआ था। महावीर के जन्मकाल के विषय में अनेक मत हैं। किन्तु ५४० वर्ष ईसा से पूर्व के समर्थक अधिक हैं। इनकी माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। इनका बाल्यकाल पूर्ण राजसी ठाठ से व्यतीत हुआ। यह सदैव दूसरों के कष्टों को देखकर पसीज जाते थे और उनके निवारण का उपाय सोचने लगते थे

उनकी इस प्रकार की चित्तवृत्ति देखकर उनके माता पिता ने यशोदा नामक एक राजकुमारी से उनका विवाह कर दिया। कुछ दिनों बाद उनके घर एक लड़की का जन्म हुआ। घर में सब सुख-सामग्री होते हुए भी महावीर ने ३० वर्ष की अवस्था में घर वार छोड़ दिया। घनघोर जंगल में १२ वर्ष के तप के बाद इन्हें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई और यह महावीर कहलाने लगे। इसके बाद इन्होंने अपने से पहले हुये तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथके सम्प्रदाय में संशोधन किया और उसे जैनधर्म संज्ञा दी। महावीर स्वामी ने अपने जीवन के शेष दिन मगध एवं आस-पास के प्रदेशों में प्रचारार्थ यापन किये। क्योंकि राजघरानों से इनका अच्छा सम्बन्ध था, इसलिये धर्मप्रचार में इन्हें पर्याप्त सहायता भी मिली। फिर भी यह मत अपने कुछ कठोर नियमों के कारण भारत को छोड़कर बाहर न फैल सका। अन्त में ४६८ वर्ष ईसा पूर्व ७२ वर्ष की अवस्था में महावीर का वर्तमान जिला पटना में पावा नामक स्थान पर निर्वाण हुआ।

महावीर के सिद्धान्त और उपदेश—महावीर स्वामी जीवन का लक्ष्य निर्वाण ही समझते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि मानव सांसारिक दुःखों से छुटकारा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करे। किन्तु इस छुटकारे के लिये वे (१) सम्यक् ज्ञान अर्थात् सत्य उपदेश को जानना, (२) सम्यक् दर्शन अर्थात् उन सत्य वचनों पर श्रद्धा पूर्वक पूर्ण आस्था रखना, (३) सम्यक् चरित्र अर्थात् उन सत्य उपदेशों में निर्दिष्ट मार्ग पर अपने जीवन को चलाना आवश्यक समझते थे। इस प्रकार जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने निम्नलिखित इन पाँच सत्य उपदेशों अर्थात् महाव्रतों की ओर भी निर्देश किया है—[१] अहिंसा (जीवमात्र पर दया करना), [२] सदा सत्य बोलना, [३] कभी चोरी नहीं करना, [४] अपरिग्रह (धन धान्य आदि वस्तुओं का मोह न करना), [५] ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम से जीवन व्यतीत करना।

महावीर के निर्वाण के कुछ काल बाद जैनमत के दो सम्प्रदा हो गये (१) श्वेताम्बर अर्थात् जिनके साधु सफेद कपड़े पहनते और अपने तीर्थंकरों की मूर्तियों को आभूषण आदि पहनाते हैं (२) दिगम्बर, जिनके साधु नग्न और यह उन्हीं तीर्थंकरों की मूर्तियों को पूजते हैं।

भगवान् गौतम बुद्ध का जीवन चरित्र—बुद्ध एक क्षत्रि राज कुमार थे। वह नेपाल की तराई में स्थित कपिलवस्तु के रा शुद्धोदन के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम माया देवी था। ऐ कहा जाता है कि माया देवी जब पूर्ण गर्भवती थी तो पति आज्ञा लेकर वह अपने माता पिता के घर जा रहीं थी, कि मार्ग में ही लुम्बिनी नामक उपवन में ५६२ वर्ष ई० पूर्व बुद्ध जन्म हो गया। गौतम बुद्ध का शैशव काल बड़े लाड़-प्यार हुआ। राजकुमारों की तरह इन्हें राजनीति आदि की शि बड़ी विधि-विधान से दी गई। किन्तु वे सदैव सोच-विचार में रहते थे और दूसरे के तनिक से दुःख पर दुःख सागर में लगाने लगते थे। माता पिता ने उनकी इस प्रकार की वै अवस्था देखकर उनका विलासमय जीवन बनाने के उद्देश्य १६ वर्ष की आयु में ही एक यशोधरा नामक नवयुवती कुमारी से विवाह कर दिया। आज्ञाकारी बुद्ध ने अपने पिता आज्ञा पालन अवश्य किया, किन्तु वे अपनी वैराग्य-वृत्ति छुटकारा न पा सके। अनेक बार गौतम को बुढ़ापा शोक मृत्यु के हृदय विदारक दृश्य देखने को मिले, जिनसे उनका संसार से उच्चाट सा हो गया। संसार दुःख और आपत्तियों खान के सिवा और कुछ नहीं—यह उनकी दृढ़ धारणा बन विवाह के २२ वर्ष बाद यशोधरा ने 'राहुल' नामक पुत्ररत्न जन्म दिया। जब यह समाचार गौतम बुद्ध को मिला तो उ उसे दूसरा बन्धन समझा।

गृह त्याग और बुद्धत्व की प्राप्ति—एक दिन अर्द्धरात्रि में राजमहल के सब लोग गाढ़ निद्रा में निमग्न थे तो बुद्ध ने राजमहल छोड़कर बन प्रस्थान करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। द्वार पर पहुँचे ही थे कि उनको स्त्री और पुत्र स्नेह ने एक बार देखने को बाध्य किया और भगवान् बुद्ध की इच्छा हुई कि पुत्र को अन्तिम बार प्यार कर लूँ, किन्तु यशोधरा के जग जाने के भय से ऐसा न कर सके। अतः २८ वर्ष की आयु में उन्होंने घर त्याग दिया। अपने राज्य की सीमा लाँघ कर उन्होंने अपने राजसी कपड़े और गहने एक भिखारी को दे दिये और स्वयं वल्कल धारण कर गुरु की खोज में चल पड़े। इधर उधर खोजने पर भी उन्हें कोरी दार्शनिकता समझाने वालों के अतिरिक्त कोई गुरु न मिला। अन्ततोगत्वा उन्होंने उरुबिल्व नामक बन में ६ वर्ष तक घनघोर तपस्या की। यहीं पर पहले पहल सर्व प्रथम उनको ५ सहयोगी मिले थे। तपस्या ने उनका शरीर सुखाकर काँटा कर दिया और एक दिन तप करते २ मूर्छित हो गये। थोड़े समय के बाद होश आने पर उन्हें यह ज्ञान हुआ कि आत्मा को दुखाना उचित नहीं और इसीलिये उन्होंने भोजन कर लिया। इस बात पर इनके ५ सहयोगियों ने इनका साथ छोड़ दिया। इस ज्ञान के बाद ही वे बुद्ध कहलाने लगे। उस समय उनकी आयु ३५ वर्ष की थी।

धर्म प्रचार और निर्वाण—ज्ञान प्राप्ति के बाद भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। बनारस के निकट सारनाथ में सबसे पहले उन्होंने उपदेश दिया फलतः उनके ५ शिष्य बन गये। लोगों का विचार है कि यह शिष्य वही थे जिन्होंने कभी भगवान् बुद्ध का साथ छोड़ दिया था। बुद्ध के उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके शिष्यों में दिनों दिन उन्नति होने लगी। अपने विचारों के प्रचार के लिये उन्होंने भिक्षुओं का एक सुदृढ़ संघ बनाया, जिसने इस धर्म को एशिया के कोने-कोने में फैलाने का सफल प्रयास

किया। अपनी आयु का शेष भाग बुद्ध ने मगध और समीप के प्रदेशों व्यतीत किया। अन्ततोगत्वा उनका पूरा परिवार भी बौद्ध धर्म प्रचार के लिये तन-मन-धन से लग गया। ८० वर्ष की आयु में ४८ वर्ष ई० पूर्व इस महान् विभूति ने इस निःसार संसार को छो जिला गोरखपुर के कुशी नगर नामक स्थान पर निर्वाण प्राप्त कि

बुद्ध की शिक्षा—(क) भगवान् बुद्ध की शिक्षा बड़ी स थीं। इनकी शिक्षा कोरी दार्शनिकता से नहीं, अपितु जीवन में धा योग्य व्यावहारिक बातों से भरी हुई थी। उनकी शिक्षा के चार मौलि नियम कहे जाते हैं (१) संसार कष्टों का घर है और मनुष्य को भोगने के लिये ही जन्म लेता है (२) सांसारिक दुःखों मूल कारण वासनाएँ ही हैं (३) इन वासनाओं को मार देना दुःख से छुटकारा पाना है। (४) वासनाओं को नष्ट करने के अष्ट मार्ग का पालन आवश्यक है—जो निम्नलिखित हैं:—

(१) शुद्ध ज्ञान (२) शुद्ध संकल्प (३) शुद्ध वार्तालाप (शुद्ध आचरण (५) शुद्ध जीवन (६) शुद्ध प्रयत्न (७) शुद्ध वि (८) शुद्ध समाधि।

(ख) भगवान् बुद्ध के विचार से निर्वाण प्राप्त करना ही मा मात्र के जीवन का लक्ष्य होना चाहिये, जो अष्ट मार्ग के पालन प्राप्त हो सकता है।

(ग) 'अहिंसा परमो धर्मः' का पालन प्रत्येक मानव के आवश्यक है।

(घ) बुद्ध कर्म और पुनर्जन्म में पूर्ण आस्था रखते थे।

(ङ) ईश्वर के अस्तित्व के बारे में भगवान् बुद्ध ने तट स्वीकार की है, अर्थात् न तो ईश्वर के अस्तित्व का समर्थन और न तो खण्डन ही।

(च) जातपात को वे पाखण्ड समझते थे।

बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण—गौतम बुद्ध सदाचार पर बड़ा जोर देते थे। वेदों की प्रामाणिकता में उन्हें बिलकुल आस्था न थी, क्योंकि उनके विचार से वेदों में सर्वत्र हिंसा, बलि आदि का समर्थन है। उन्होंने अपनी शिक्षा के लिये ब्राह्मण से लेकर चण्डाल तक दरवाजा खोल दिया था। इस प्रकार उनकी शिक्षा से स्त्री, पुरुष, बाल वृद्ध और नवयुवक सभी लाभ उठा सकते थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म फैलने के अनेक कारण थे (१) बुद्ध का पवित्र जीवन (२) साधारण शिक्षा (३) सर्व साधारण भाषा (४) जातपात का न होना (५) भिक्षुओं का प्रयत्न (६) राजकीय सहायता (७) विपक्षी मतों का अभाव।

बौद्ध धर्म की अवनति के कारण—अपनी जन्मभूमि भारत से बौद्ध धर्म कैसे लुप्त हो गया, यह सचमुच आश्चर्य का विषय है। किन्तु उसके मिटने के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) **हिन्दू धर्म की ओर झुकाव**—हिन्दू धर्मने अपने अन्दर पर्याप्त अन्तर कर लिया था। बुद्ध को अवतार मानकर अहिंसा का समर्थन किया। फलस्वरूप जनता ने पुनः हिन्दू धर्म को प्रधानता दी।

(२) **बुद्ध धर्म की दलबन्दी**—सम्राट् कनिष्क के समय से पहले ही बुद्ध धर्म दो विभागों में विभाजित हो गया था, एक हीनयान और दूसरा महायान। महायान हिन्दू धर्म का प्रायः समर्थन करता था।

(३) **राजकीय सहायता बन्द होना**—कनिष्क की मृत्यु के बाद राजकीय सहायता बन्द हो गई। गुप्तवंशीय राजाओं ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया।

(४) **भिक्षुक संघ का चरित्र**—भगवान बुद्ध के आदर्शों को छोड़ प्रायः भिक्षुकों ने भोग विलास से जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। इससे जनता के हृदय में उनके प्रति अश्रद्धा हो गई।

(५) हिन्दू प्रचारक—आठवीं और नवीं शताब्दी में हिन्दू धर्म ने कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य जैसी दो महान् विभूतियों को जन्म दिया, जिनकी तर्क शक्ति के सामने बुद्धमत के समर्थक टिक न सके।

(६) इस्लामी आक्रमण—मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार बौद्ध मठों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, जिससे बौद्ध धर्म भारत से विलीन होता गया।

बुद्ध धर्म भारत से मिट अवश्य गया, फिर भी आज संसार की जन संख्या का ¼ भाग अर्थात् ५० करोड़ लगभग इस धर्म के समर्थक इन देशों में हैं:—तिब्बत, स्याम, मंगोलिया, जापान, लंका, नैपाल, ब्रह्मा, चीन, हिन्दचीन आदि।

अभ्यास

(क) महात्मा बुद्ध की क्या शिक्षा थी? बौद्ध धर्म का प्रचार किस प्रकार हुआ? (सन् १९५५ में पूछा गया)

(ख) वर्धमान महावीर के जीवन चरित तथा उनकी शिक्षाओं पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

(ग) भगवान् बुद्ध और महावीर के समय की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक हालत कैसी थी? विस्तार पूर्वक उत्तर दो।

(घ) बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति के कारणों के विषय में आप क्या जानते हैं? उत्तर दो।

(ङ) भगवान् बुद्ध का जीवन चरित लिखकर, सिद्ध कीजिये कि बौद्ध धर्म के समर्थक आज भी संसार की कुल जन संख्या का ¼ भाग हैं।

—०—

पञ्चमखण्ड

मौर्यवंश

चाणक्य—भारतवर्ष में सर्वप्रथम ऐतिहासिक वंश मौर्यवंश यही समझा जाता है, जिसने सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। यह वंश चन्द्रगुप्त मौर्य से चला। चन्द्रगुप्त ने अपने देश से विदेशी राज्य को समाप्त कर अपने राज्य को हिन्दूकुश तक फैलाया। किन्तु मौर्य वंश का यश गान करने वाले भली प्रकार से जानते हैं कि इस वंश को भूमि से उठाकर भारत की राजगद्दी दिलाने वाला निर्धन किन्तु राज-नीति का एक चतुर खिलाड़ी ब्राह्मण ही था, जिसे हम चाणक्य, विष्णुगुप्त एवं कौटिल्य के नाम से जानते हैं। चाणक्य तक्षशिला के पास किसी गाँव का रहने वाला था। उस समय तक्षशिला विद्या का केन्द्र समझी जाती थी। ब्राह्मण जाति का होने के नाते इन्होंने तक्षशिला में अध्ययन किया और बाद में वहाँ राजनीतिशास्त्र की गद्दी पर अध्यापन भी कराने लगे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आनेवाले राजकुमारों के सम्पर्क में पड़कर चाणक्य को देश की राजतन्त्र और गणतन्त्र की दुर्बलता भली प्रकार से विदित थी। अतः उन्होंने देश में एक केन्द्रीय राज्य स्थापन की योजना बनाई, जो कि भारत को विदेशी लुटेरों से बचाने के लिये आवश्यक थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने नवनन्दों से सहायता माँगी, किन्तु नवनन्दों ने सहायता देने की तो कौन कहे—उल्टा इस कलियुग के इस दुर्वासा का अपमान किया। बस, अब क्या था? इस ब्राह्मण ने नन्दवंश का संहार करने को दृढ़ प्रतिज्ञा की, जिसकी पूर्ति के लिये उन्हें चन्द्रगुप्त जैसा साहसी कर्मवीर मिल गया। चन्द्र-गुप्त ने सर्व प्रथम चाणक्य की सहायता से पञ्जाब विजय किया और बाद में मगध के राजा नन्द का नाश कर राज्यगद्दी प्राप्त की। चाणक्य अपनी धुन के बड़े पक्के थे, राजनीति के षड्यन्त्रों से वे भली प्रकार परिचित थे, संस्कृत का मुद्राराक्षस इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

चाणक्य बड़े सदाचारी, तपस्वी एवं त्यागी थे। सुख सामग्री रहते हुए भी कभी उन्होंने अपने ब्राह्मण स्वभाव का त्याग नहीं किया वे राजमहलों में न रहकर सदैव शहर के बाहर एक झोपड़ी रहते थे। चन्द्रगुप्त के राज्य में आने वाले विदेशी इस मुकुटरहित सम्राट के इस बर्ताव से बड़े प्रभावित थे। चाणक्य ने नीतिशा पर एक ग्रन्थ लिखा, जिसका नाम 'अर्थशास्त्र' है। यह ग्रन्थ चन्द्रगु के शासन काल पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। संक्षेप में यही कह जा सकता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का एक रत्न था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन और विजय—चन्द्रगुप्त मौर्यवंश क संचालक था। उसके बचपन के विषय में निश्चय रूप से कुछ न कहा जा सकता, फिर भी अधिकांश लोग उसे मगध का राजकुमा मानते हैं। सम्भवतः उसकी मां नीच वंश की थी, जिसका ना 'मुरा' था। नन्दों के अन्तिम राजा के सेनापति पद पर यह का कर चुका था और लोगों का विचार है कि राजा के विरुद्ध इस षड्यन्त्र रचा, जिसमें असफल रहने के कारण इसे जंगलों का आश्र लेना पड़ा। तक्षशिला में शायद यह सिकन्दर से मिला और मग पर आक्रमण करने की उसे सलाह दी। किन्तु इसने अपने बर्ता से सिकन्दर को किसी प्रकार रुष्ट कर दिया और वहाँ से प्राण बच के ख्याल से भी भाग निकला।

पञ्जाब की विजय—सिकन्दर के लौट जाने पर तथा जाने पर चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के सहयोग से यूनानी राज्य के वि एक आन्दोलन खड़ा कर दिया जिसमें चन्द्रगुप्त को पूरी सफल मिली। क्योंकि सिकन्दर के मरने के बाद उसके सेनापतियों राज्य बँटवारे को लेकर द्वन्द्व मचा हुआ था। यही कारण था लोग अब उनसे ऊब से गये थे। इसलिये पञ्जाब की सब जाति ने चन्द्रगुप्त का साथ दिया और फलस्वरूप यूनानियों को भारत सीमा से बाहर खदेड़ दिया।

मगध की विजय—पञ्जाब की विजय से चन्द्रगुप्त की सेना-शक्ति में वृद्धि हो गई थी। इधर काश्मीर के पर्वतीय भाग के राजा पर्वतक ने भी पर्याप्त सहायता दी। अब चन्द्रगुप्त की सेनाशक्ति नन्द के विनाश के लिये पर्याप्त सुदृढ़ थी। इसलिये उसने मगध पर आक्रमण कर और वहाँ की राज्यगद्दी पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इसके बाद अपने राज्य के अनेक बाकी शत्रुओं से भी छुटकारा पाकर ३२१ वर्ष ई० पूर्व चन्द्रगुप्त राज्य का स्वामी बन गया।

सेल्यूकस का आक्रमण—सेल्यूकस सिकन्दर का प्रधान सेनापति था। उसने सिकन्दर द्वारा विजित स्थानों को प्राप्त करने के विचार से ३०५ वर्ष ई० पू० उसने सिन्धु नदी को पार कर भारत पर आक्रमण किया। किन्तु भारत की स्थिति अब पहले जैसी न थी। इसलिये उसे चन्द्रगुप्त के केन्द्रीय सेना संगठन के आगे परास्त होना पड़ा। चन्द्रगुप्त की वीरता पर प्रसन्न होकर सेल्यूकस ने अपनी नवयुवती कन्या का विवाह भी चन्द्रगुप्त से कर दिया। चन्द्रगुप्त ने अपने श्वसुर को उपहार स्वरूप ५०० हाथी दिये। इसके बाद सेल्यूकस ने अपना एक राजदूत जिसका नाम मेगस्थनीज था, मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में भेजा। मेगस्थनीज चिरकाल तक चन्द्रगुप्त की राजधानी में रहा और उसने उस समय की राज्यप्रणाली का वर्णन अपनी 'इण्डिका' नामक पुस्तक में किया। चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' और मेगस्थनीज की 'इण्डिका' चन्द्रगुप्त की सैनिक एवं शासन प्रणाली पर विशद प्रकाश डालती है। अतः इन्हीं को आधार मानकर ही तत्कालीन स्थिति पर लिखा जा सकता है।

चन्द्रगुप्त का राज्य प्रबन्ध

(१) केन्द्रीय शासन—यह सत्य है कि चन्द्रगुप्त एक विख्यात सम्राट् था, किन्तु उसकी सारी प्रशंसा का श्रेय उसके राज्य-प्रबन्ध को है। यह ठीक है कि वह एक निरंकुश राजा था और उसके अधिकार

असीम थे। फिर भी उसके राज्यमें सब प्रकार से सुख और शान्ति थी राज्य-प्रबन्ध में परामर्श देने के लिये एक मन्त्री परिषद् भी थी, जिसक मुख्य मन्त्री स्वयं चाणक्य था। राजदरबार में प्रत्येक व्यक्ति अप दुःख की पुकार कर सकता था, जिसे राजा स्वयं सुनता था और उस निवारण का उपाय करता था। साम्राज्य के सभी भागों से परिचि रहने के विचार से सर्वत्र विश्वसनीय गुप्तचर नियुक्त थे। स्त्रियाँ भ गुप्तचरों का कार्य करती थीं। युद्धकाल में राजा स्व सेना संचालन करता था। संक्षेप में यही कहा जा सकता कि शासन सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी एवं सेना सम्बन्धी सब का को राजा स्वयं या अपने नियुक्त व्यक्तियों द्वारा कराता था।

(२) आय के स्रोत—आय का सबसे बड़ा साधन कृषिकर थ जो कुल पैदावार का ¼ भाग होता था। कृषि की सिंचाई का उचि प्रबन्ध था, क्योंकि ऐसा न करने पर कृषि की उपज कम होने भय था, जो राज्य के लिये बड़ा हानिकारक होता। बिकी वस्तु पर लगे कर का बड़ा महत्त्व था, क्योंकि उस समय विदेशों से य चीजें बिकने के लिये और यहाँ से बाहर जातीं थीं।

(३) कानून और न्याय विभाग—कानून बड़े कठोर थे। क कभी साधारण अपराधों पर भी हाथ पैर काट दिये जाते अपराध स्वीकार कराने के लिये अपराधियों को कठोर दण्ड दि जाता था। बड़ा अपराध करनेवाले को प्राणदण्ड दिया जाता था

(४) प्रजा-हित के कार्य—राजा की प्रजाहित कार्यों में प रुचि थी। आने जाने के लिये सड़कों का उत्तम रीति से निर्म किया गया था, जिससे व्यापार में बड़ी सुविधा होती थी। सड़ के दोनों ओर छायादार वृक्ष थे और बीच बीच में यात्रियों सुविधा के लिये सराय स्थापित की जाती थीं। प्रजा का ध्यान रा को सदैव बना रहता था।

(५) प्रान्तीय शासन—शासन करने की सुविधा के विचार से राज्य को प्रान्तों में विभक्त कर दिया गया था। प्रत्येक प्रान्त किसी न किसी राजकुमार या गवर्नर के अधीन था, जो प्रायः राजवंश से सम्बन्धित होता था। प्रान्त जिलों में बाँटे गये थे और जिले गाँवों में। जिले का उच्च अधिकारी स्थानिक कहलाता था और गाँव का मुखिया 'गोप'। बड़े-बड़े नगरों के अधिकारी 'नागरिक' कहलाते थे। स्थानीय सुविधाओं के अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता प्रान्तीय विभागों को सदा मिलती थी। उस समय की राजधानी पाटलिपुत्र पूर्णरूप से सुसज्जित रहती थी। इस नगरी की लम्बाई नौ मील और चौड़ाई लगभग डेढ़ मील थी, जिसके चारों ओर लकड़ी की चार दिवारी थी। कहा जाता है कि इस चार दिवारी में ६४ दरवाजे और ५७० बुर्जियाँ थीं। शत्रुओं से राजधानी के बचाव के लिये चारों ओर गहरी खाई खोदी गई थी, जिसमें निरन्तर सोन नदी का पानी भरा रहता था। लोगों का विचार है कि उस समय कोई नगरी वैसी सुन्दर और वैभवशाली न थी। लोगों के भ्रमणार्थ वहाँ अद्वितीय उपवनों का निर्माण भी कराया गया था। राजधानी की सजधज से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि और नगरों का भी अच्छा प्रबन्ध था। राजधानी की नगरपालिका के ३० सदस्य थ, जो छः विभागों का निरीक्षण करते थे। उन विभागों के मुख्य काम ये थे—

१—बिक्री वस्तुओं पर टैक्स लेना, जो सम्भवतः दस रुपया प्रति सैकड़ा था।

२—मानव के जन्म-मरण का ज्ञान रखना।

३—बाहर से आनेवाले लोगों की कठिनाइयों के निवारण का ध्यान रखना।

४—नगर की कलाकौशल सम्बन्धी उन्नति को प्रोत्साहन देना।

५—व्यापार सम्बन्धी निरीक्षण करना, ताकि लोग नाप तोल में गड़बड़ी न करें।

६—कारीगरों की सुविधा का ध्यान रखना और उनके उचित वेतन आदि का पूरा ख्याल रखना।

(६) सामाजिक हालत एवं सेना प्रबन्ध—ऊपर कहा गया है कि मौर्य वंश का राज्य बड़ा उत्तम और श्रेष्ठ राज्य माना जाता था। क्योंकि लोग सुखी थे और उन्हें चोरी आदि का कभी भय न रहता था। व्यापार के सम्बन्ध में अधिक लिखा-पढ़ी की आवश्यकता न पड़ती थी, क्योंकि लोग विश्वासपात्र होते थे। कहीं कलह का नाम न था। स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन जी-जान से करती थीं। सैनिक प्रबन्ध प्रशंसा योग्य था। सेना के लगभग ६ विभाग थे—(१) घुड़सवार (२) हाथी (३) सामुद्रिक (४) पैदल (५) रथ (६) सेना को सामान पहुँचानेवाला विभाग। इस प्रकार सेना की कुल संख्या ७ लाख के लगभग थी।

(७) चन्द्रगुप्त की अन्तिम घड़ी—भारत के योग्य शासकों का पथ-प्रदर्शन करनेवाले, राजनीति के चतुर खिलाड़ी एवं प्रजा को तन-मन-धन से माननेवाली विभूति चन्द्रगुप्त की मृत्यु के विषय में विश्वसनीय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जैन ग्रन्थों ने उसे जैन मानकर यह लिखा है कि उसके राज्य के अन्तिम दिनों में एक बड़ा अकाल पड़ा, जिससे उसने राज्य-पाट अपने पुत्र बिन्दुसार को सौंप दिया और स्वयं एक जैन महात्मा के साथ मैसूर जाकर श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर जैन धर्मानुसार उपवास करके २९७ वर्ष ई०पू० अपना प्राण त्याग दिया, किन्तु कई विद्वानों का मत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के जैनी होने का चाणक्य द्वारा लिखित 'अर्थ शास्त्र' एवं मेगस्थनीज द्वारा लिखित 'इण्डिका' में कहीं प्रमाण नहीं। अतः हो सकता है कि जैन धर्मानुयायी कोई दूसरा चन्द्रगुप्त हो। किन्तु मृत्युकाल प्रायः लोग उपरोक्त ही मानते हैं।

प्रियदर्शी अशोक

अशोक का राज्यकाल—चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का संस्थापक अवश्य था, किन्तु अशोक इस वंश का सबसे बड़ा सम्राट् माना जाता

है। इसके पिता का नाम बिन्दुसार और पितामह का नाम चन्द्रगुप्त था। अशोक ने अपनी मेधावी शक्ति से पिता को वश में कर लिया और राज्यगद्दी का अधिकारी बना। राज्यगद्दी के लिये इसे अपने सौतेले भाइयों से गहरा संघर्ष भी करना पड़ा। अन्ततोगत्वा २६८ वर्ष ई० पू० इसका राज्याभिषेक हुआ। इसने लगभग ४० वर्ष तक राज्य किया। सम्राट बनने से पूर्व अशोक तक्षशिला तथा उज्जैन प्रान्तों का गवर्नर रह चुका था। उसने तक्षशिला और उज्जैन की जनता को अपनी प्रबन्ध योग्यता से आकृष्ट कर लिया था। यही कारण था कि पिता का सबसे बड़ा पुत्र न होते हुए भी इसको उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। सम्भवतः आरम्भ में यह शैव मत का माननेवाला था और बाद में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने में कलिंग की विजय ने सम्भवतः इसे सबसे अधिक प्रेरित किया।

कलिंग की विजय—सिंहासनारोहण के समय प्रायः समस्त भारत पर मौर्यवंश का झण्डा फहराता था, केवल काश्मीर और कलिंग के प्रान्त को छोड़कर। अतः सर्वप्रथम उसने काश्मीर पर आक्रमण किया और उसे अपने राज्य का एक अंग बना लिया। काश्मीर विजय से उसकी शक्ति और साहस बढ़ गया और अशोक ने कलिंग पर आक्रमण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। अपने साथ एक बड़ी सेना लेकर रण में जा डटा। उधर कलिंग नरेश ने भी अपनी शक्ति का परिचय देने की ठान ली। फलस्वरूप भयंकर संग्राम हुआ, जिसमें लगभग १ लाख मनुष्य मृत्यु के घाट उतार दिये गये और १॥ लाख के करीब बन्दी बनाये गये। इस लड़ाई में अशोक की विजय अवश्य हुई, किन्तु अशोक से 'सशोक' होकर उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि वह आज से रणभेरी नहीं, धर्मभेरी बजायेगा। उसके बाद उसने शीघ्र ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और उसके प्रचारार्थ अपने प्रचारकों को देश विदेश में भेजा।

अशोक का राज्य प्रबन्ध—राज्य प्रबन्ध में अशोक ने प्रायः वे ही ढंग अपनाये जो उसके पितामह चन्द्रगुप्त के थे। किन्तु अशोक के क़ानूनी और दंड विधान के नियम अपने पितामह के राज्य जैसे कठोर न थे। राजा को सम्मति देने के लिये राज्यपरिषद् थी। आचार-विचार की शुद्धता पर राजा का बड़ा ध्यान रहता था। प्रजा को कर्त्तव्य ज्ञान कराने के उद्देश्य से धर्मप्रचारकों को नियुक्त किया गया था, जो धर्म-महामात्र कहलाते थे। अशोक को जगत् प्रसिद्ध 'देवानां प्रिय' की उपाधि दिलाने का श्रेय जिस बात को है वह यह है कि वह हर समय प्रजा के दुःख विनाश के लिये तत्पर रहता था। उसने अपनी कार्यपालिका को आज्ञा दी कि जब भी कोई व्यक्ति मुझसे मिलना चाहे उसे तत्काल मुझसे मिलने दिया जाय। राजा स्वयं वेश बदल कर अपनी प्रजा की वास्तविक स्थिति जानने का प्रयास करता था। विजयभेरी बजाने के स्थान पर उसने धर्मभेरी बजाना ही श्रेयस्कर समझा। यह अशोक के कोमल हृदय का ज्वलन्त उदाहरण है। प्रत्येक स्थान से कर आदि द्वारा प्राप्त धनराशि का व्यय वहाँ की जनता के स्वास्थ्य और अध्ययन आदि के लिये ही चिकित्सालय और विद्यालय खोल कर किया जाता था। अशोक ने राज्य प्रबन्ध के लिये अपने राज्य को ५ प्रान्तों में बाँट दिया था—

(१) पूर्वी प्रान्त, जिसकी राजधानी तोसाली थी। (२) पश्चिमी प्रान्त, जिसकी राजधानी उज्जैन थी। (३) उत्तरी प्रान्त की राजधानी तक्षशिला। (४) दक्षिणी प्रान्त की राजधानी स्वर्णगिरि। (५) केन्द्रीय राजधानी पाटलिपुत्र थी। प्रान्तों का राज्यशासन किसी राज-वंशीय राजकुमार या योग्य व्यक्तियों द्वारा होता था, किन्तु केन्द्रीय शासन स्वयं राजा ही देखता था। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अशोक जैसा प्रजापालक राजा दूसरा नहीं हुआ, क्योंकि वह कहता था कि मेरी प्रजा मेरी संतान है। जैसे एक पिता अपने पुत्र को

अनिष्ट स्वप्न में भी नहीं होने देता उसी प्रकार मेरा भी कर्त्तव्य है। राज्यकोष से विधवाओं, निर्धनों एवं अनाथों का भरण-पोषण किया जाता था। विश्व में अशोक ही सम्भवतः पहला सम्राट् था जिसने मनुष्यों के स्वास्थ्य सुधार की तरह पशुओं के लिये भी आतुरालयों का निर्माण करवाया।

सामाजिक अवस्था—अशोक जैसे सम्राट् के राज्य में कोई व्यक्ति दुःखी रह सकता है ऐसी कल्पना भी करना भूल है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र सुखमय जीवन यापन करते थे। राजा किसी के साथ पक्षपात न करता था। कला अपनी चरम सीमा पर थी, अतः प्रत्येक वर्ण ने यथाशक्ति उन्नति की। बहुविवाह प्रथा थी, क्योंकि राजा ने स्वयं भी कई विवाह किये थे। स्त्रियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। पर्दा प्रथा केवल बड़े घरों में थी, किन्तु सर्वसाधारण की स्त्रियाँ पर्दा से घृणा करती थीं। अश्लील गाने बजाने पर राजकीय प्रतिबन्ध था और लोगों को शाकाहार के लिये प्रेरित किया जाता था। शिक्षा पर सम्भवतः सबसे अधिक व्यय किया जाता था, जिसके फलस्वरूप अनेक विद्यालयों से कलाकौशल एवं साहित्य के योग्य छात्र निकलते थे। धर्म के विषय में बौद्ध धर्म का अनुयायी होते हुए भी राजा अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सहानुभूति प्रकट करता था। किसी धर्म की निन्दा करना वह महा पाप समझता था।

अशोक का धर्म और प्रचार—अशोक बौद्ध धर्म का पक्का समर्थक था और उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि लोगों में धार्मिक भावना का विकास हो। धर्म के लिये वह चार बातों पर अधिक ध्यान देता था। १—बड़ों का आदर और छोटों पर दया करना। २—अहिंसा अर्थात् किसी को कष्ट न देना। ३—सत्य—'सत्यान्नास्ति परो धर्मः' को चरितार्थ करना। ४—'उदारचरितानान्तु वसुधैव

कुटुम्बकम्' का पालन करते हुए किसी धर्म विशेष के प्रति घृ
न करना।

सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये निम्नलिखित क
किये :—

१—अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारके लिये बुद्ध मत को राजध
घोषित किया, ताकि अन्य लोग इस धर्म की ओर अनायास आ
हों। २—शिला स्तम्भों पर राजकीय आदेशों को खुदवाकर राज्य
प्रसिद्ध चौराहों पर स्थापित करवाया, ताकि जनता उन्हें पढ़े अ
उनका पालन करना सीखे। ३—धर्म महामात्रों की नियुक्ति द्व
जनता में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करवाया। ४—अश
का स्वयं भिक्षु बनना बौद्धमत प्रचार के लिये अत्यधिक सहा
हुआ, क्योंकि भिक्षु के वेश में राजा प्रत्येक बुद्ध तीर्थ पर ग
और वहाँ स्मृतिपट स्थापित किये। ५—विहारों की स्थापना
ताकि भिक्षु और भिक्षुणियों को रहने और खाने-पीने में
न हो। ६—विदेशी प्रचार के लिये अशोक ने बौद्ध धर्म के अ
अच्छे विद्वान भिक्षु नियुक्त किये, जो लंका, बर्मा, मिस्र, ची
जापान, सुमात्रा, जावा आदि स्थानों पर गये और उन्हें व
पर्याप्त सफलता भी मिली। अशोक के लड़के महेन्द्र और लड़
संघ मित्रा ने भी इस प्रचार में पूर्ण भाग लिया। इस प्रचार क
से बौद्ध मत के अनुयायी एशिया, अफ्रीका और योरुप में
फैल गये।

अशोक और उसके आदेशों का ऐतिहासिक महत्त्व—अशे
अपने सदाचार आदि गुणों के कारण भारतवर्ष के इतिहास की
बात ही जाने दीजिये, विश्व के इतिहास में अपना बेजोड़ स्थान र
हैं। संसार में ऐसे कितने लोग हैं, जो सैन्य आदि राजकीय शक्ति
के होते हुए उनका उपयोग समर भूमि की अपेक्षा धर्म प्रचार के लि
करते हैं! सम्भवतः लाखों में एक या दो होंगे उनमें अशोक का न

ध्रुव तारे की तरह कहा जा सकता है। वर्षों के निःशस्त्र आन्दोलन के बाद इधर भारत स्वतन्त्र हुआ और उसने अपने झण्डे को अशोक के धर्मचक्र से अलंकृत कर अशोक के प्रति श्रद्धा प्रकट की, जो आवश्यक भी थी। यह सत्य है कि अशोक ने धार्मिक क्षेत्र में अवर्णनीय ख्याति प्राप्त की, किन्तु इससे सैनिक शक्ति निर्बल हो गई। यही कारण था कि अशोक के उत्तराधिकारी बृहद्रथ, अपने ही सेनापति के हाथों मार दिया गया और इसके बाद मौर्यवंश अधःपतन की ओर सरकने लगा।

अशोक के लेख अनेक स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं, जिनसे उसके आदेशों का ऐतिहासिक महत्त्व भली प्रकार व्यक्त होता है, जैसे बनारस के समीप सारनाथ, मैसूर, काठियावाड़ के गिरनार जिले में एवं देहरादून, पेशावर, भूपाल आदि स्थानों का नाम लियां जा सकता है। (१) अशोक के लेखों में खुदे आदेश हमें अच्छी तरह बताते हैं कि उस समय भारत के प्रान्तों में कौन २ सी भाषाएँ प्रचलित थीं। (२) अशोक ने बुद्ध धर्म के प्रचार के लिये किन २ साधनों का प्रयोग किया. (३) अशोक के राज्य काल में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था, यह उसके चौराहों पर स्थापित लेखों से ही ज्ञात होता है। (४) अशोक कालीन कला-कौशल की उत्कृष्टता का ज्ञान उन स्तम्भों से भली प्रकार होता है, जिन पर आदेश खुदे हुए हैं। इसके अतिरिक्त उस समय की शासन-प्रणाली और राजा-प्रजा के सम्बन्ध ज्ञान में भी ये आदेश हमारी पर्याप्त सहायता करते हैं। अतः इन आदेशों को ऐतिहासिक ज्ञान की कुञ्जी कहा जा सकता है।

अभ्यास

(क) 'चन्द्रगुप्त मौर्य को राजगद्दी दिलाने का श्रेय चाणक्य को ही है' इस उक्ति पर युक्ति युक्त विचार कीजिये।

(ख) चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन चरित एवं विजयों के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त विवरण दो।

(ग) चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य प्रबन्ध पर एक नोट लिखकर उसके समय की सामाजिक अवस्था का परिचय दो।

(घ) कलिंग की विजय का प्रभाव अशोक पर क्या पड़ा? और इसके बाद उसने क्या किया? उत्तर दो।

(ङ) अशोक के राज्य प्रबन्ध का सामान्य परिचय देकर, बुद्धमत के प्रचारार्थ किये गये उसके प्रयत्नों का उल्लेख कीजिये।

(च) अशोक और उसके आदेशों का एतिहासिक महत्त्व के बारे में आप क्या जानते हैं? विस्तार पूर्वक समझाओ।

—०—

षष्ठ खण्ड

कुशाण वंश

कनिष्क का जीवन व्रत एवं विजय—कनिष्क ऐसी जाति का सदस्य था, जिसे घुमक्कड़ कहा जाता है। यह जाति सर्वप्रथम पश्चिमी चीन में विचरण करती थी। कुछ दिनों बाद सम्भवतः इसे चीनियों ने अपने देश से भगा दिया। इसके बाद यह जाति काबुल के मार्ग से भारत आ पहुँची। चीन में यह जाति 'यूचीं' कहीं जाती थी। किन्तु यहाँ इसकी प्रसिद्धि कुशाण वंश या कुशाण के नाम से हुई। इसी वंश का प्रतापशाली तीसरा सम्राट् कनिष्क था। अपने वंश के विस्तार में यह सदैव तन-मन-धन से प्रयत्न करता था। उसकी रणचातुरी बड़े-बड़े वीरों के लिये आश्चर्य की वस्तु थी। कहा जाता है कि उसमें चन्द्रगुप्त जैसी वीरता और अशोक जैसी धर्म-भावना जन्मसिद्ध थी। उसके राज्यारोहण के बारे में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुछ विद्वान् ७८ ई० मानते हैं और शेष १२५ ई० स्वीकार करते हैं। किन्

…वर्ष तक लगभग उसने राज्य संचालन किया—इसे सभी लोग …ीकार करते हैं। उसके सैनिक प्रबन्ध का निरीक्षण करते हुए …ालव इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मानों उसने जीवन भर युद्ध …लों में रहने की प्रतिज्ञा की थी। उसकी बड़ी-बड़ी विजयें …म्नलिखित हैं :—

(१) पञ्जाब और मथुरा की तत्कालीन शासक शक जाति को …प्रथम कनिष्क ने पराजित कर अपनी सैनिक एवं आर्थिक …क्ति सुदृढ करली। इस प्रकार पश्चिमोत्तर राज्यों से उसे कर …लने लगा।

(२) मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में कुशाण वंश का झण्डा …हराने की लालसा कनिष्क के हृदय में चिरकाल से थी। अतः …सने एक बड़ी सेना से आक्रमण किया। पहले तो मगध नरेश ने … युद्ध की ठानी, किन्तु कनिष्क की रण-चातुरी ने उसे झुकने को …ध्य कर दिया। पराजित राजा ने उपहार स्वरूप विजित राजा …ि 'अश्वघोष' जैसा कवि दिया, जो कनिष्क के लिये हर्ष का …षय था।

(३) कनिष्क की प्रसिद्ध विजय चीन के कुछ भागों की मानी …ाती है। चीन को पराजित करने की इसके हृदय में बड़ी इच्छा थी, …यों कि इसके पूर्वजों को चीनियों ने खदेड़ दिया था। यही कारण … कि कनिष्क ने पूरी सजधज के साथ पामीर के पर्वतों को लाँघ- …र चीन के खुतन, यारकन्द और काशगर पर विजय प्राप्त की।

(४) काश्मीर पर आक्रमण किया और पूर्ण विजय के बाद वहाँ …छ भवनों का निर्माण करवाया, जिसमें काश्मीर के पास एक भवन …निसपुरा नामक गांव में अब भी वर्त्तमान है।

साहित्य और कला—कुशाण वंश के राज्यकाल में साहित्य … पर्याप्त वृद्धि हुई। सचमुच यह एक आश्चर्य का विषय है कि …निष्क ने लड़ाकू प्रवृत्ति के साथ-साथ साहित्य प्रेम का भी परिचय

पालन किया। अपने साहित्य स्नेह के कारण ही उसने 'देवे
की उपाधि प्राप्त की थी। अश्वघोष जिन्हें कनिष्क काश्मीर विक
के बाद अपने साथ लाया था, वह संस्कृत का महान कवि था
इसके अतिरिक्त नागार्जुन और वसुमित्र भी थे, जिन्होंने बौद्ध
के साहित्य में पर्याप्त वृद्धि की। आयुर्वेद का प्रसिद्ध विद्वान् चा-
उसी के राज्य दरबार का रत्न समझा जाता है। इनमें दर
अश्वघोष, मातृचेट, वसुमित्र एवं चरक हैं। कनिष्क के राज्य
में ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की जो आज सर्वत्र श्र
की दृष्टि से देखी जाती है। रामायण, महाभारत एवं मनुस्मृ
को नये सिर से संशोधन सहित लिखा गया। संस्कृत भाषा
इस काल में पर्याप्त बल मिला, क्योंकि जैन तथा बुद्धधर्म के अनुया
भी अब संस्कृत में अपने ग्रन्थ लिखने लग गये थे। ज्योतिषशा
भारतीयों ने बड़ी उन्नति की, क्योंकि अब उनका सम्बन्ध यूनानि
से घनिष्ठ हो चुका था। इस प्रकार साहित्य की उन्नति इस
में चौतरफा हुई।

कनिष्क को अशोक की तरह कला की उन्नति में बड़ी ता
थी। उसकी कला सम्बन्धी रुचि का प्रमाण तो पेशावर की मीनार
तथा तक्षशिला और मथुरा के स्तूप एवं विहार ही हैं। कनिष्क
काश्मीर के पास एक सुन्दर नगर बसाया था। जो अब केव
अपने को एक गाँव के रूप में ही व्यक्त कर रहा है। साधु-सं
सियों के निवास के लिये बड़ी २ सुन्दर एवं चमकदार गुफा
निर्माण किया गया जो हमें दक्षिण हैदराबाद स्टेट की अजंता-गु
या उड़ीसा के राज्य सरगुजा में उपलब्ध हो सकती है। व्यापा
हाथी दाँत, मलमल, और सोना चान्दी के सुन्दर-सुन्दर गहने
कारीगरी बस देखते बनती थी, जिनका निर्यात विश्व के कोने
तक होता था।

सामाजिक एवं आर्थिक दशा—चारों वर्णों में ब्राह्मण
सर्वश्रेष्ठ और आदरणीय स्थान समझा जाता था। इस आद

दिये ब्राह्मणों की पवित्रता, सादगी एवं त्याग तपस्या से भरा व्यवहार ही कारण था। किन्तु कुछ क्षत्रिय इस सम्मान को अच्छा न समझते । अतः उन्होंने विरोध किया और अपना मत भी पृथक् स्थापित रके दिखा दिया कि क्षत्रिय जाति भी ब्राह्मणों से मेधावी कम नहीं। खा-देखी छोटी जातियों ने भी ब्राह्मणों का विरोध किया और द्वंश का राज्य स्थापित कर क्षत्रियों को दिखा दिया कि ज्य हम भी कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण एक दूसरे थ होड़ करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि कनिष्क त्काल में ब्राह्मणों ने पुनः अपना पद ऊँचा करना आरम्भ कर था। अब हिन्दूधर्म में विदेशियों को पचाने की शक्ति पर्याप्त थी। धवा विवाह बुरा समझा जाता था। बाल विवाह और बहु- वाह की प्रथा जोरों पर थी। स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का आदर रते थे। वर्ण-आश्रम की व्यवस्था जोर पकड़ रही थी। इस समय र्थिक दशा अत्युन्नत अवस्था में थी। कृषि को प्रधानता जाती थी। कृषि की उपज का ⅙ भाग करके रूप में लिया ता था। अकाल आदि स्थिति में कृषकों को आर्थिक सहायता खूब जाती थी। कृषि-सिंचाई का समुचित प्रबन्ध था। कृषि के अतिरिक्त दों का व्यापार भी पर्याप्त उन्नति कर चुका था। रोम की रमणियाँ रतीय वस्तुओं से अपने को सजाकर सौभाग्यशालिनी एवं कृत- र्थ समझती थीं।

कनिष्क की मृत्यु और कुशाण वंश का पतन—कनिष्क की यु हमें याद दिलाती है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' ऊपर कहा गया के कनिष्क ने जीवन भर युद्ध करने की ठान रखी थी। किन्तु के कर्मचारी उसकी इस मनोवृत्ति से बड़े दुखित थे। इसलिये दैव कनिष्क के संहार की बात सोचते रहते थे। एक बार किसी में लगा राजा अचानक बिमार पड़ गया। इस अवसर से षड़- करने वाले कर्मचारियों ने लाभ उठाया और रजाई में राजा

को खूब लपेट कर उसका प्राणान्त कर दिया। इस प्रकार कनि की हृदय विदारक मृत्यु हुई। कनिष्क की मृत्यु के बाद कुशाण के कुछ सम्राटों ने इस वंश को जीवित रखने का भरसक प्रयास कि किन्तु पंजाब और उत्तरी राजस्थान की जातियों के विरोध के स वह देर तक टिक न सका और उसने अपना दम तोड़ दिया।

अभ्यास

(क) कनिष्क के जीवन चरित्र का वर्णन करते हुए सिद्ध कीजिये कि चन्द्रगुप्त जैसी वीरता और अशोक जैसी धर्म भावना थी।

(ख) 'कुशान वंश के राज्यकाल में संस्कृत साहित्य का पुनरुजीवन इस युक्ति को सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

(ग) कनिष्क के समय भारत की सामाजिक एवं धार्मिक दशा के आप क्या जानते हैं? उत्तर दो।

(घ) क्या कनिष्क की मृत्यु का कारण उसकी युद्ध लिप्सा ही थी?

—o—

सप्तम खण्ड

गुप्त वंश

गुप्तवंश का परिचय—कुशाणवंश के बाद एक नये वंश प्रादुर्भाव हुआ, जिसने भारत के इतिहास में अद्वितीय यश ख्याति प्राप्त की। इस वंश का राज्य लगभग दो शताब्दियों तक देश में रहा, जिसे हम गुप्त वंश के नाम से जानते हैं। इस वं आधिपत्य में भारत ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृ एवं धार्मिक सभी प्रकार की उन्नति की, जो आज तक हिन्दुओं लिये गौरव की वस्तु है। यही वह वंश है, जिसने अपने काल 'स्वर्ण युग' क संज्ञा से विश्व में फैलाया है। इस वंश के प्रसिद्ध सम्राट् हुए १—चन्द्रगुप्त प्रथम, २—समुद्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त प्रथम—यद्यपि चन्द्रगुप्त से पहिले श्रीगुप्त राज्य कर चुका था, किन्तु वंश का संस्थापक और संचालक चन्द्रगुप्त ही समझा जाता है। उसका विवाह लिच्छवी वंश की राजकुमारी से हुआ; जिसका नाम कुमारदेवी था। कुमारदेवी का वंश बड़ा शक्तिशाली था, अतः चन्द्रगुप्त की शक्ति और बढ़ गई। इस विवाह की प्रसन्नता में राजा ने स्वर्णमुद्रा चलाई। उस समय लिच्छवी वंश की धाक सर्वत्र जम रही थी, जो चन्द्रगुप्त के लिये बहुत सहायक सिद्ध हुई। इस विवाह ने चन्द्रगुप्त के भाग्य को चार चाँद लगा दिये। इसने अपने नाम पर ३१९-३२० ई० में गुप्त सम्वत् भी चलाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का समुद्रगुप्त राज्यसिंहासन पर बैठा।

समुद्रगुप्त और उसकी विजय—अपने पिता चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद हिन्दू राजाओं में सबसे अधिक प्रभावशाली और प्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्त ही था। प्रयाग के किले में स्थित अशोक-लाट पर इसका जीवन चरित अंकित है। अपने पिता के काल में ही यह शासन कार्य में कुशल हो गया था। यही कारण था कि उसने ४५ वर्ष के राज्यकाल में सम्पूर्ण भारत पर अपनी धाक जमा ली थी। युद्ध करने का इसे बड़ा चाव था। इसीलिये अंग्रेजी इतिहास लेखक उसे भारत का नेपोलियन कहते हैं। उनके कथन में सत्यता भी प्रकट होती है, क्योंकि जिस प्रकार नेपोलियन ने सारे योरप को पराजित किया था वैसे ही समुद्रगुप्त ने सारे भारत को। मुख्य विजय निम्नलिखित हैं—

(१) सर्वप्रथम उत्तरी भाग के अनेक राज्यों पर अधिकार जमाया। (२) प्रथम विजय के बाद उड़ीसा के जंगलों में उत्पात करनेवाली जातियों को पूर्णरूप से अपने राज्य में मिला लिया। (३) इसके बाद दक्षिण भारत की विजय के लिये पर्याप्त सेना लेकर चला और सभी राजाओं को कर देने के लिये बाध्य कर दिया। सचमुच दक्षिण भारत की विजय उसके शासन काल में एक महत्त्वशाली घटना है। (४)

समुद्रगुप्त की उपरोक्त विजयों का प्रभाव ऐसा पड़ा कि भारतवर्ष अन्य राज्यों ने भी स्वरक्षा के लिये समुद्रगुप्त की शरण ली और निश्चल पूर्वक कर आदि देना स्वीकार कर लिया। इन विजयों के उपलक्ष्य समुद्रगुप्त ने एक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें प्रायः सभी छोटे राजा शामिल हुए। समुद्रगुप्त को महाराजाधिराज की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इसके राज्य की सीमा उत्तर दक्षिण से लेकर नर्मदा न तक और पूर्व पश्चिम में हुगली नदी से लेकर यमुना नदी प्रायः थी।

समुद्रगुप्त की महत्ता—समुद्रगुप्त सेना संचालन में निःसन्देह जहाँ अपना सानी न रखता था वहाँ कला-कौशल की अनुपम योग्यता भी उसमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। गानविद्या का उसे बड़ा शौक था वीणा की तारों पर उसकी अँगुलियों का नृत्य देखते बनता था विद्वानों का वह बड़ा सत्कार करता था। उसे कवि कर्म में पर्याप्त अभ्यास था, इसलिये वह स्वयं भी कविता करता था। वह बड़ा उदार था। निर्धन और असहायों पर दृष्टिपात करते ही उसका हृदय दया से भर आता था। वह वैष्णव धर्म का अनुयायी था, किन्तु उसने भूलकर भी अन्य धर्मावलम्बियों पर कभी कुदृष्टि न डाली थी। उसने लंका के राजा मेघवर्ण को बुद्ध-गया पर भिक्षुओं के लिये बिहार बनवाने की प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दी थी। योरुप के विद्वान् उसे भारत का नेपोलियन मानते हैं, किन्तु इन दोनों में आकाश और जमीन का अन्तर है। (१) समुद्रगुप्त जीवन पर्यन्त किसी युद्ध में पराजित नहीं हुआ, जब कि नेपोलियन ने अपने जीवन के अन्तिम दिन अपमान से और एक बन्दी के रूप में सुनसान द्वीप पर काटे। समुद्रगुप्त ने सर्वत्र विजय का डंका पीट कर भी किसी को अपनी शासन-विधान से असन्तुष्ट नहीं होने दिया जब कि नेपोलियनने अपने शासनकाल में फ्रांस वालों को भी असन्तुष्ट कर दिया। अतः समुद्रगुप्त की नेपोलियन से तुलना करना यदि पूर्ण अन्याय नहीं तो रुपये में एक आने तो

और न प्याज व लहसुन ही भक्षण करते थे। पशु विक्रय नहीं किया जाता था। मण्डी के पास बूचड़ खाने भी नहीं थे। चाण्डाल नगरों के बाहरी भाग में रहते थे, नगर में आने से पूर्व उन्हें अपने आगमन की सूचना देनी पड़ती थी। देश के बारे में वह वर्णन करता है कि भारतमें बड़े २ नगर हैं, जिन में प्रायः धनिक लोग ही अपने सेवकों के साथ रहते हैं। यात्रियों के लिये धर्मशालाएँ और सराएँ पर्याप्त संख्या में हैं। पाटलिपुत्र में एक ऐसा आतुरालय है, जहाँ से रोगियों को भोजन वस्त्र सहित औषधि निःशुल्क दी जाती है।' प्रियदर्शी अशोक का भवन जो आज भी वर्त्तमान है, जिसे देखकर विश्वास नहीं होता कि इसे मानव ने निर्मित किया है या किसी देवताने। उपरोक्त वर्णन से यही सिद्ध होता है कि राज्य-प्रबन्ध उत्तम रीति से होता था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी कुमारगुप्त उसके पश्चात् स्कन्दगुप्त आदि अनेक राजा हुए, इनके काल में हूणों ने कई बार भारत पर आक्रमण किये, जिनका सामना भी बड़े साहस और वीरता से किया गया, किन्तु कुछ काल बाद यह साम्राज्य केवल एक सीमित दायरे में ही परिवर्तित हो गया।

हमारे इतिहास का स्वर्ण युग—गुप्त सम्राटों का शासन काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहलाता है, जिसके लिये हिन्दू समाज को बड़ा गर्व है। क्योंकि हिन्दुओं की सभ्यता, शिक्षा, शिल्प, कला एवं विज्ञान की अद्भुत उन्नति जो इस युग में हुई वह पहले कभी दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। गुप्तकाल के आरम्भ होने से पूर्व भारत विदेशी आक्रमणकारियों का शताब्दियों तक क्षेत्र बना था, किन्तु भारतीय जनता अब आक्रमणकारियों के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिये किसी प्रकार तैयार न थी। क्योंकि लोगों में अब राष्ट्रीय भावना जोर पकड़ रही थी। प्रत्येक व्यक्ति अब यह समझने लगा था कि बिना स्वतन्त्रता प्राप्त किये सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं कला संबंधी उन्नति कठिन ही नहीं

असम्भव भी है। इसलिये गुप्त कालीन योग्य शासकों को पाकर ज
ने विदेशी शक्ति को उखाड़ कर भारत की सीमा से बाहर फेंक दि
इस युग को 'स्वर्ण काल' मानने के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) भारतीय शासन की स्थापना—मौर्य शासन के अन्त
होते भारत के अधिकांश भागों पर विदेशी जातियों ने राज्य स्था
कर लिया था, जिनमें शक और कुशाण जाति का नाम लिया जा सके
है। इन जातियों ने लगभग ५ शताब्दियों तक भारत के जन-मा
उपभोग किया। अन्ततोगत्वा गुप्त सम्राटों की शक्ति के आगे उ
शक्तियाँ टिक न सकीं। फलतः चिरकाल के बाद भारतीयों ने स्वत
के वातावरण में सुख की साँस ली।

(२) हिन्दुत्व की पराकाष्ठा—भारत की सर्व प्रधान और
भूमि को मातृभूमि एवं पितृभूमि मानने वाली हिन्दू जाति के सम
का यह युग था। अतः उस काल में हिन्दू मन्दिरों और मूर्ति
निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हुआ। समुद्रगुप्त और कुमारगु
अश्वमेध यज्ञ द्वारा बुद्धमत को पछाड़ दिया, जिससे हिन्दू धर्म की
दुन्दुभी बजने लगी। फिर भी यह निःसन्देह कहा जा सकता
यह उन्नति किसी धर्म की बाधक होकर नहीं, अपितु साधक होकर

(३) देवभाषा का पुनरुज्जीवन—भारतीयता के प्रबल स
गुप्तसम्राट अच्छी तरह समझते थे कि देश को समृद्धिशाली बन
लिये देवभाषा संस्कृत का प्रचार आवश्यक है। संस्कृतभा
मृत समझने वाले मित्रों को गुप्तकालीन सिक्कों का अवश्य
करना चाहिये, ताकि उनको ज्ञात हो जाय कि उस समय राज
संस्कृत थी। विश्व का माना हुआ संस्कृत नाटककार कालिदास
युग की देन है, जिसे 'भारत का शेक्सपीयर' कहकर युरोप वासी
भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। अमरसिंह के अमरकोष
कालिदास के शकुन्तला नाटक ने संसार में नाम पैदा किया। अ
अनेक कृतियाँ हैं, जिन्होंने इस युग को स्वर्ण युग बनाया है।

(४) वैज्ञानिक उन्नति—इस युगकी सर्वश्रेष्ठ विशेषता जो बताई जाती है वह यह है कि इस युग ने हमें भिन्न-भिन्न विषयों की महान् विभूतियों का दर्शन कराया। कालिदास और अमरसिंह जो साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं उनका वर्णन ऊपर किया गया है। परन्तु इनके अतिरिक्त इस युग ने हमें जहाँ आर्यभट्ट और वराहमिहिर, जैसे ज्योतिषाचार्य दिये, वहाँ धन्वन्तरि जैसे जगद् विख्यात वैद्य भी दिये, जिन्होंने विश्व में नाम कमाया था। आशा की जाती है कि संस्कृत की कमियाँ बतानेवाले मित्र इनकी कृतियों का अध्ययन कर अवश्य गुप्तकाल की स्वर्णमयी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

(५) कला-कौशल—कला-कौशल कितना उन्नत था, इसके प्रमाण जिला झाँसी में स्थित देवगढ़ मन्दिर एवं कानपुर जिले का मन्दिर आज भी वर्तमान हैं। इसी प्रकार चित्र-कला के लिये अजन्ता और एलोरा की गुफाओं को देखा जा सकता है, जिनकी प्रशंसा विश्व में अपने को वेजोड़ समझनेवाले पाश्चात्य कलाकारों ने भी की है। मूर्तिकला ने जो उन्नति इस युग में प्राप्त की, उसका दिग्दर्शन सारनाथ, मथुरा एवं पाटलिपुत्र के संग्रहालयों में किया जा सकता है। इस युग में हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रवर्त्तकों की मूर्त्तियाँ बड़ी सूक्ष्मता और निपुणता से बनाई जाती थीं, जिन्हें आज भी देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि ये मानव के हाथों से निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त गुप्तसम्राट् संगीत, नृत्य और मुद्राकला में पर्याप्त रुचि लेते थे।

(६) व्यापारिक दशा—'व्यापारे वसते लक्ष्मीः' की उक्ति का गुप्तकाल में शासक और शासित बड़ा आदर करते थे। यही कारण था कि व्यापार की उन्नति के लिये राज्य की ओर से बड़ी-बड़ी सड़कें निर्मित हुईं। फलस्वरूप रोम आदि विदेशों ने भी दिल खोलकर हमसे लेन-देन किया, जिसके लिये आज भी दोनों राष्ट्र एक दूसरे का आदर करते हैं। कविवर कालीदास ने अपने मेघदूत में जो

उज्जैन का वर्णन किया, "वह सचमुच मानव को मृत्युलोक का स्वर्गिक सुख प्रदान करता है, जिसे अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता।

(७) शिक्षा का विकास—शिक्षा पर राजकीय धनराशि का अधिकांश भाग व्यय किया जाता था। तक्षशिला, अजंता और नालन्दा विश्वविद्यालयों में बड़ी दूर-दूर से छात्र अध्ययन के लिये आते थे। हरेक विषय के अध्ययन का उचित प्रबन्ध था। इसी का फल है कि इस युग ने बड़े-बड़े कलाकार, साहित्यिक एवं वैज्ञानिक पैदा किये, जिनके नाम लेते ही एक देश भक्त आज भी आनन्द सागर में लहर उठता है।

कविसम्राट् कालिदास

साहित्य जगत में विचरण करनेवाला कौन व्यक्ति प्रातः स्मरणीय कालिदास के नाम से परिचित नहीं। संस्कृत-साहित्य से तो यदि इस विभूति का नाम हटा लिया जाय तो यह एक कटु सत्य है कि संस्कृत-साहित्य नीरस हो जायगा। यही कारण है कि संस्कृत को महत्त्व देनेवाले विश्व के प्रत्येक महाविद्यालय में इस विभूति की कृतियों का आदर किया जाता है। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, अद्भुत विचारशक्ति एवं नाटक-निर्माण कौशल पर मुग्ध होकर केवल भारतीय जनता ने ही नहीं, विश्व की जनता ने अपने यहां कवि शिरोमणियों की पंक्ति में इन्हें सहर्ष स्थान दिया है।

जीवनवृत्त—किन्तु दुःख का विषय है कि हम अपने जन्मदाता महाकवि के जीवन सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण आज तक नहीं प्राप्त कर सके। ये कब और किस स्थान में उत्पन्न हुए? इनके माता-पिता कौन थे? इत्यादि प्रश्नों के बारे में सिवा किंवदन्तियों के उत्तर के और हम कुछ नहीं कह पाते। प्राचीन कवियों की भाँति हमारे इस कवि कुलगुरु को भी अपने जीवनवृत्त लिखने की तनिक भी इच्छा न हुई, जिससे हमें निश्चय रूप से कुछ ज्ञात हो। वास्तव में कालिदास का जीवन वृत्तान्त लिखते समय जो कुछ

यक्त किया जाता है उसकी आधार शिला अनुमान ही है, क्योंकि नका जीवन वृत्त पूर्णरूप से अन्धकार में है।

एक जनश्रुति के अनुसार कालिदासजी अपने प्रारम्भिक जीवन महामूर्ख थे। एक दिन ये एक वृक्ष की उसी डाल को काट रहे जिस पर स्वयं बैठे थे। उधर से कुछ पण्डित आये जो ऐसे मूर्ख की ई दिनों से खोज कर रहे थे। उन्होंने इनको राजकुमारी विद्योत्तमा साथ विवाह के लिये राजी कर लिया और वहाँ मौन रहने की आज्ञा भी दी। हमारे कालिदासजी का विवाह पण्डितों के षड्यन्त्र राजकन्या विद्योत्तमा से सम्पन्न हुआ। मूर्खता का ज्ञान होते ही ाजकुमारी ने इन्हें तिरस्कारपूर्वक घर से निकाल दिया, जिससे दुःखित ोकर ये काली माँ की आराधना में लग गये। कुछ दिनों बाद गदम्बा प्रसन्न हुईं और उन्हें एक योग्य विद्वान होने का वरदान कर अन्तर्धान हो गयीं। बाद में काली का उपासक होने के नाते इनकी ालिदास के नाम से प्रसिद्धि हुई। इसी प्रकार मृत्यु के विषय में ी एक दन्तकथा प्रचलित है कि एक बार लंका-भूपति कुमारदास यहाँ ये अतिथि रूप में ठहरे हुए थे। यहाँ एक लालची वेश्या इन्हें विष दे दिया। यह कहाँ तक सत्य है भगवान ही जानें।

एक दूसरी जनश्रुति से यह सिद्ध किया जाता है कि इनका लालन-ालन राजसी ढंग से व्यतीत हुआ। इस बात का समर्थन ालिदास की रचनाओं से भी होता है। ये बड़े घराने के सदस्य । निर्धनता किसे कहते हैं इसका अनुभव उन्हें कभी हुआ ही था। किन्तु कुछ लोगों के विचार से इनकी बाल्यावस्था एक ाधारण रीति से व्यतीत हुई, जिसके कारण यह चिरकाल तक अनपढ़ रहे। कुछ भी हो यह सत्य है कि ये ब्राह्मण जाति के दस्य थे।

कालिदास की जन्मभूमि के बारे में बड़ा मतभेद है। भारत की भिन्न-भिन्न जन्मभूमियाँ इन्हें अपना सुपुत्र घोषित करने में

स्वाभिमान करती हैं। काश्मीर निवासी उन्हें काश्मीरी मानते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं में काश्मीरी केसर आदि का विशेष वर्णन किया है। बंगाली विद्वान उन्हें काली का दास मानकर बंगाल निवासी कहते हैं, क्योंकि काली की पूजा वहीं अधिक होती है। मालव एवं सिंहल निवासी इन्हें अपने देश की भू-भाग की विभूति मानते हैं। किन्तु कालिदास ने अपनी रुचि उज्जयिनी भूमि के प्रति अत्यधिक प्रकट की है। लोगों का अनुमान है कि उज्जयिनी ही महाकवि की जन्मभूमि रही होगी, जिसके लिये मेघदूत वर्णन का प्रमाण दिया जाता है। अतः हम भी कालिदास को उज्जयिनी ही समझते हैं।

कवि का समय—कालिदास की जन्मभूमि की तरह ही जन्मकाल के विषय में भी बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मानकर उनके राजदरबार के नवरत्नों में गिनते हैं। किन्तु दूसरे विद्वान सिद्ध करते हैं कि गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र का कहीं कालिदास ने विशद वर्णन नहीं किया, उलटा उज्जयिनी नगरी का मनोरञ्जक वर्णन किया है। गुप्त काल मानने वाले विद्वान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की द्वितीय राजधानी उज्जयिनी मानकर महाकवि को गुप्तकालीन सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। विक्रमादित्य प्रथम शैव थे, इसका प्रमाण उनका बनवाया हुआ उज्जयिनी में महाकाल का मन्दिर है। कालिदास के शैव होने का प्रमाण उनके मेघदूत की वर्णित आरति-पूजा आदि हैं। अतः कहा जा सकता है हमारे कविवर गुप्तकालीन न होकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य प्रथम के समकालीन हों। इनके जन्मकाल के विषय में मुख्यतः तीन मत हैं—(१) छठी शताब्दी वाला कहरूरवाद (२) पाँचवीं शताब्दी वाला गुप्त कालीनवाद या संस्कृत का पुनरुज्जीवन वाद (३) प्रथम शताब्दी (ई० पू०) वाला वाद।

प्रकृति प्रेम और शैली—प्रकृति प्रेम प्रायः कवियों की रचना का प्रधान विषय होता है। किन्तु कालिदास का प्रकृति प्रेम तो

अनोखा और विचित्र सा है, क्योंकि इन्होंने अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बहिर्जगत् में देखते हुए दोनों में एकता लाने का सफल प्रयास किया है। प्रकृति का प्रत्येक अंश चाहे वह बड़ा पत्थर हो और चाहे छोटा पुष्प, उनकी दृष्टि में मानववत् वह जीवनधारण करता है। एक तरफ ऋतुसंहार के वर्णन से जहाँ महाकवि हमें अपने प्रकृति प्रेम का परिचय देते हैं, वहाँ दूसरी ओर शकुन्तला के पतिगृह गमन पर वृक्ष और लताओं के आँसूओं का दर्शन भी कराते हैं। कालिदास प्रायः प्र ति को नायिका का रूप प्रदान करते हैं, जिससे सन्तप्त मानव हृदय को सान्त्वना और आशा का सन्देश प्राप्त होता है। इनके प्रकृति प्रेम में कहीं किसलय रूपी करों का वायु झकोरों की सहायता से ताले देना, भ्रमर समूह का मधुर संगीत छेड़ना, लता-नर्तकियों का नृत्य करना, कहीं चन्द्र का अपनी किरणरूपी अँगुलियों से अपनी प्रियतमा रजनी के बिखरे अन्धकार रूपी केशों का सँवारना और मानव हृदय के साथ हरिण जाति का तादात्म्य स्थापन भला किसे मुग्ध नहीं कर देता। यदि कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी कि हमारे महाकवि का प्रकृति में मानवता का आरोप ही आगे चलकर आज के छायावाद का जन्मदाता बना।

निःसन्देह हमारे कवि ने और लोगों की तरह कथानक इतिहास से ही लिये हैं, जो वस्तुतः अस्थि अवशेष थे। मांस रुधिर से पूरित कर अनेक सुन्दर गहनों से उन्हें सजाकर सजीव करना कवि की अपनी विशेषता है। वैदर्भी रीति ही इनके कवित्व का आधार अलंकारों के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त थे, विशेषतः उपमालंकार के लिये। यही कारण है कि आगे चलकर उन्हें 'उपमा कालिदासस्य' का यश प्राप्त हुआ। उपमा के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, अर्थान्तर न्यास आदि अलंकार भी इन्हें बड़े प्रिय थे। चरित्र चित्रण में भी कवि कालिदास अपना विशेष महत्त्व रखते थे। उपरोक्त गुणों से आकृष्ट हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है :—

चिरकाल रसाल ही रहा, जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा।
जय हो उस कालिदास की, कविता-केलि कला विलास की॥

रचनाएँ—कवि ने दो महाकाव्यों की रचना की (१) कुमारसम्भव (२) रघुवंश। खण्ड काव्य भी अनेक हैं (१) मेघदूत (२) ऋतुसंहार जिनमें प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कालिदास ने तीन नाटकों का निर्माण किया (१) विक्रमोर्वशीय (२) मालविकाग्नि-मित्र (३) अभिज्ञानशाकुन्तल। कालिदास को अपनी सब रचनाओं में कल्पनातीत सफलता मिली, किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल के लिये वे आज जगत् में लोकोत्तर प्रसिद्धि प्राप्त किये हैं। किसी ने उचित ही कहा है:—

'पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका साऽर्थवती बभूव॥

अभ्यास

[क] गुप्त वंश का सामान्य परिचय देकर चन्द्रगुप्त प्रथम पर लिखो।

[ख] समुद्रगुप्त की दिग्विजय का सामान्य परिचय दो।

[ग] समुद्रगुप्त पर एक निवन्ध लिखकर उनकी महत्ता को भली प्रकार दर्शाओ।

[घ] रामगुप्त, चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य, और फाह्यान पर नोट लिखो।

[ङ] 'गुप्तकाल हमारे इतिहास का स्वर्ण युग है', इस उक्ति से कहाँ तक सहमत हैं? युक्तियुक्त उत्तर दो।

[च] 'महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त किंवदन्तियों पर आधारित' यह कहाँ तक सत्य है? सप्रमाण उत्तर दो।

[छ] संस्कृत साहित्य में कालिदास का स्थान निश्चित कीजिये।

—०—

अष्टम खंड

वर्धन वंश

हूण जाति के निरन्तर आक्रमणों के फलस्वरूप गुप्तवंश का शासन अपना दम तोड़ चुका था। यही कारण था कि भारत के केन्द्रीय शासन के स्थान पर अब पुनः छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई, जिसका प्रभुत्व लगभग एक शताब्दी तक रहा। इस शताब्दी में कोई ऐसा शक्तिशाली राजा नहीं हुआ जो अपने पराक्रम से अन्य राज्यों को एक छत्र में ला सके। अन्त में सातवीं शताब्दी के आगमन के साथ-साथ एक ऐसी विभूति का प्रादुर्भाव हुआ जिसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अपना विजयी झण्डा फैहरा दिया। इस विभूति को इतिहास पाठक सम्राट् हर्षवर्धन के नाम से जानते हैं। इसके राज्यकाल के ज्ञान के लिये दो बड़े साधन हैं (१) बाण का हर्षचरित्र (२) चीनी यात्री ह्यूनसांग की यात्रा कथा।

वर्धनवंश और छठी शती का भारत—यद्यपि वर्धन वंश के नरवर्धन, आदित्यवर्धन आदि राजा हुए, किन्तु प्रसिद्धि प्रभाकर वर्धन से ही मानी जाती है। प्रभाकरवर्धन के पिता का नाम आदित्य वर्धन था, जिसकी मृत्यु के बाद राज्यशक्ति प्रभाकरवर्धन के हाथ आई। वह बड़ा उत्साही और पराक्रमी था, जिसका वर्णन हम बाण के हर्षचरित्र में विस्तारपूर्वक पढ़ते हैं। प्रभाकरवर्धन की तीन सन्तानें थीं जिनका नाम क्रमशः राज्य वर्धन, हर्षवर्धन एवं राज्यश्री था। राज्यश्री का विवाह मौखरी वंश के क्षत्रीय राजकुमार ग्रहवर्मन से हुआ। प्रभाकरवर्धन की अचानक मृत्यु होते ही उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन राजा बनाया गया। अपने पिता की

मृत्यु के समय वह हूणों से लड़ रहा था। किन्तु यह दुःखित समाचार पाते ही वह शीघ्र लौट आया। राज्यसिंहासन पर पदार्पण करते ही उसे दूसरा दुःखित समाचार मिला कि मालवा के राजा ने उसके बहनोई ग्रहवर्मन का वध कर दिया है और उसकी एक मात्र बहिन राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। यह समाचार सुनते ही राज्यवर्धन बदला लेने के लिये चल पड़ा। बात ही बात में उसने मालव नरेश को झुकने को बाध्य किया, किन्तु मालवनरेश के मित्र वंगदेशीय शशांक राजा ने धोखा देकर राज्यवर्धन का अन्त कर दिया।

हर्षवर्धन और विजय—अपने बड़े भाई का शशांक द्वारा कपट से वध सुनकर हर्षवर्धन इतना दुःखी हुआ कि, पहले तो राज्यकार्यों से उसने सन्यास लेने की ठानी। किन्तु मन्त्रियों के समझाने-बुझाने पर इसे पूर्वजों की मान मर्यादा का ध्यान आया और वह राज्य करने को उद्यत हो गया। सन् ६०६ ई० में राज गद्दी पर पदार्पण करते समय हर्षवर्धन १६ वर्ष के लगभग था। उसके सामने कई विकट समस्यायें थीं, जिनका समाधान करना उसके लिये आवश्यक था, किन्तु सर्व प्रथम उसने अपनी बहिन राज्यश्री का पता लगाना ही उचित समझा। इधर-उधर के दौड़ अन्वेषण के बाद उसने बहिन को वैधव्य जीवन से दुःखी होकर वन में चिता बनाते पाया। हर्ष के बहुत समझाने पर राज्यश्री भाई के साथ अपने राज्य पर लौट आई। इसके बाद हर्ष को अपनी विशाल सेना के साथ कन्नौज की ओर बढ़ते देख शंशाक न जाने कहाँ भाग गया। कन्नौज का राज्य स्वतन्त्र होते ही राज्यश्री को राज्य कार्य देखने की प्रार्थना की गई, जिसे उसने स्वीकार नहीं किया। अन्त में वहाँ की जनता और मन्त्रियों के आग्रह से हर्ष ने यह भार अपने ऊपर लिया और बाद में अपनी राजधानी भी कन्नौज घोषित की। इसका असर उसकी सेना और राजनीति

पर अच्छा पड़ा। इसके बाद हर्ष ने छः वर्ष निरन्तर युद्धों में बिताये। फलस्वरूप पञ्जाब के कुछ भाग, सिन्ध, सीमा प्रान्त और राजपूताना को छोड़कर समस्त उत्तरी भारत पर हर्ष का शासन चलने लगा। आसाम और गुजरात काठियावाड़ के नरेशों ने भी उससे सन्धि कर ली।

पराजय और राज्य विस्तार—लगभग उत्तर भारत पर विजय प्राप्त करने पर हर्ष ने दक्षिण भारत की ओर कदम बढ़ाया। किन्तु चालुक्य वंशीय पुलिकेशिन् द्वितीय नामक नरेश ने हर्ष की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। इस पराजय के बाद नर्मदा नदी ही हर्ष के राज्य की सीमा बन गई। इस प्रकार हर्ष के राज्य की सीमा काश्मीर से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और बंगाल, उड़ीसा, और राजस्थान के कुछ भाग इसके आधीन थे। सम्भवतः आसाम और नेपाल नरेश भी इसे अपना राजा मानते थे।

हर्ष का शासन प्रबन्ध—हर्ष ने राज्य प्रणाली प्रायः गुप्त-कालीन ही उचित समझी, यहाँ तक कि कर्मचारियों का नाम तक भी परिवर्त्तित नहीं किया। सम्राट् ही राज्य का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता था। उसकी सहायता के लिये अनेक मन्त्री थे, जो योग्यतानुसार एक या दो पदों की देख-भाल किया करते थे। प्रान्तीय शासन और स्थानीय शासन को महत्त्व दिया जाता था, फिर भी राजा स्वयं घूम-घूमकर सर्वत्र निरीक्षण करता था कि प्रजा को क्या कष्ट है। बाण ने हर्ष के बारे में विशद वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने हर्ष को सब देवताओं के गुणों से सम्पन्न अवतार माना है। मन्त्रियों की नियुक्ति करना, शान्तिकाल में सैन्य-संगठन करना और युद्ध के समय सेनाध्यक्ष का कार्य करना, अपनी प्रजा के मंगल के लिये अनेक धार्मिक कृत्यों का आयोजन करना, प्रजा के कष्टों की अन्तिम अपील सुनना आदि कार्य हर्ष स्वयं करता था। अन्य राजाओं की तरह वे सदा राजमहल में ही जीवन यापन न करते थे, अपितु प्रजा

के हित के लिये पावस ऋतु को छोड़कर सदैव देश में दौरा किया करते थे। हर्ष के राज्यकाल में सन् ६२३ ई० में एक २९ वर्षीय चीनी विद्वान ह्वेनसाङ्ग आया, जिसने अपने १३-१४ वर्ष के भारतीय भ्रमण में हर्ष के बारे में लिखा है, "राजा का दिन तीन भागों में विभक्त था--दिन का एक भाग तो शासन के मामलों में व्यतीत होता था और शेष दो भाग धार्मिक कृत्यों में। वे काम से कभी थकनेवाले नहीं थे। अच्छे कार्यों में वे इतने संलग्न रहते थे कि उन्हें सोना और खाना-पीना तक भूल जाता था"। किन्तु इतना होते हुए भी गुप्तकाल से दण्ड विधान कठोर था। भयानक अपराधों के दण्ड स्वरूप हाथ-पैर, नाक एवं कान काट दिये जाते थे। कर बहुत हलके थे, कुल उपज का ⅙ भाग भूमि कर लिया जाता था। हर्ष के समय शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। इस समय नालन्दा विश्वविद्यालय की संसार में धूम थी। क्योंकि वहाँ दस सहस्र छात्र निःशुल्क शिक्षा पाते थे। इन छात्रों के अध्यापन के लिये १५ सौ भिन्न-भिन्न विषयों के उद्भट विद्वान नियुक्त थे। निःशुल्क शिक्षा के अतिरिक्त छात्रों को भोजन, वस्त्र भी राज्य की ओर से दिया जाता था। छात्र चीन, जावा, सुमात्रा एवं लंका आदि विदेशों से आकर यहाँ निरन्तर शिक्षा प्राप्त करते थे। कहा जाता है कि छात्र के प्रवेश होने से पूर्व एक मौखिक परीक्षा होती थी, जो उसमें पास होता था उसे केवल भर्ती किया जाता था।

सामाजिक एवं धार्मिक दशा—चीनी यात्री ह्वेनसाङ्ग ने भारतीयों की सादगी, सच्चरित्रता, उदारता और नम्रता का दिल खोलकर वर्णन किया है। उसने लिखा है कि 'भारतवासी छल-प्रपञ्च से पूर्णरूप से अनभिज्ञ होते हैं और उनके व्यवहार में सत्यता सदैव लक्षित होती है'। यही कारण था कि उस समय प्रजा सुख और शान्ति का जीवन यापन करती थी। स्त्रियों की दशा पहले जैसी थी, फिर भी उनका आदर किया जाता था। शिक्षा

व्यवस्था बालक और बालिकाओं के लिये समान थी। बाल-विवाह की प्रथा उन्नति कर रही थी, किन्तु विधवा-विवाह न होता था। पर्दा प्रथा उतनी दृढ़ न थी, क्योंकि राजकुमारी राज्यश्री स्वयं सर्व-साधारण सभाओं में भाग लेती थी और लोगों के सुख-दुःख के बारे में जानकारी रखती थी।

धार्मिक भावनाओं में विभिन्नता आ गयी थी, ऐसा महाकवि बाण तथा चीनी यात्री के संयुक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है। धर्म की वास्तविकता कर्मकाण्ड से कुछ दब सी गयी थी। इस काल में लोगों ने ईश्वर में सरल विश्वास रखने की अपेक्षा दार्शनिकता को प्रोत्साहन दिया। हिन्दू और बौद्ध आदि धर्म के अनुयायियों में अन्धविश्वास बढ़ रहा था। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि जनसमूह असहिष्णुता आदि के कारण धर्म के सच्चे मार्ग से गिर रहा था। किन्तु हर्ष के विषय में निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि उसकी धर्मनीति उदार थी। बौद्धधर्म का अनुयायी होते हुए भी उसका आदर सब धर्मों पर समान था। क्योंकि वह बुद्ध की पूजा के साथ-साथ सूर्य और शिव की भी पूजा करता था। लोग मांस खाना पाप समझते थे।

हर्ष का विद्या प्रेम तथा चरित्र—हर्ष अपने राजदरबार में बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों को आश्रय देता था, जिनमें 'गद्यंकवीनां निकषं वदन्ति' की उक्ति को चरितार्थ करनेवाले महाकवि बाणभट्ट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बाण ने हर्षचरित्र लिखा, जिसमें हर्ष कालीन अवस्थाओं का विशद वर्णन मिलता है। हर्ष स्वयं बड़ा विद्वान था, क्योंकि उसके लिखे तीन नाटक मिलते हैं (१) रत्नावली (२) नागानन्द (३) प्रियदर्शिका और एक व्याकरण शास्त्र पर भी पुस्तक सम्भवतः लिखी थी। सचमुच आश्चर्य का विषय है कि युद्धकाल में खड्ग चलाने वाला हाथ लेखनी से धार्मिक चित्रण कैसे कर पाया? गुप्तकाल की तरह इस युग में भी

गणित, नाटक, दर्शन एवं धर्मविज्ञान आदि पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। बाण के अतिरिक्त और भी उद्भट विद्वान थे, हर्ष के दरबार की शोभा बढ़ाते थे, जिनमें मयूरभट्ट, हरिदत्त, मातङ्गदिवाकर जिनमें प्रसिद्ध थे।

हर्ष का चरित्र उपरोक्त गुणों से ही स्पष्ट हो जाता है। इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं कि हर्ष बुद्धमत का अनुयायी होते हुए भी एक साहसी और पराक्रमी योद्धा था। समुद्रगुप्त और अशोक के गुणों का संगम यदि हर्ष को कहा जाय तो अत्युत्तम होगा। प्रजा के साथ उसका पुत्रवत् स्नेह था। हर्ष बड़ा दानी था और उसके दान में यह विशेषता थी कि उसका दान योग्यपात्र को ही मिलता था, कुपात्र को नहीं। निःसन्देह हर्ष को आदर्श सम्राट मानना उचित है।

महाकवि बाणभट्ट

बाण की प्रथम-अवस्था—वत्सवंश के प्रकाण्ड विद्वान चित्रभानु के बाण पुत्र थे। हमारे महाकवि को मातृ सुख न था, क्योंकि बाल्यावस्था में ही इनकी माता ने इन्हें दूसरों के भरोसे छोड़ भगवान धर्मराज के यहाँ प्रस्थान किया। इसके बाद पिता ने अनेक कष्टों से इनका पालन किया, अभी बाण १४ वर्ष के ही हुए थे कि इनके पिता ने भी स्वर्गारोहण किया। बाण के पूर्वज शोणभद्र नदी के तट पर स्थित प्रीतिकूट गाँव में रहते थे, जिनके पास पर्याप्त भूमि और सम्पत्ति थी। इस वंश के लोग प्रायः विद्वान थे। इस प्रकार बाण की जन्मभूमि विहार स्थित शाहाबाद जिला मानना ही उचित है। बाण हर्षवर्धन के समकालीन थे। हर्ष का राज्य ६०६ वर्ष ई० से लेकर ६४७ तक माना जाता है। इसलिये हम बाण को सातवीं शताब्दी के आरम्भ का कह सकते हैं।

बाण की युवा-अवस्था—पिता के बाद बाण ही अपने पिता की अतुल सम्पत्ति का स्वामी बना। बाण को अब कोई रो

कने वाला न था, इसलिये वह अब स्वेच्छापूर्वक विचरण करने ा क्योंकि कहा भी है—'यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। कमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्'। इसके बाद स्वेच्छाचारी न मण्डली आठों पहर बाण के साथ-साथ घूमने लगी। घर की धुलता ने बाण के हृदय में विश्व भ्रमण की लालसा पैदा की सकी पूर्ती उन्होंने अपने अनेक मित्रों के साथ की। भारत भौगोलिक स्थिति का ज्ञान बाण ने इस प्रकार अच्छी तरह कर या था। अब इनके हृदय में साहित्यदर्शन और विज्ञान जानने उद्दाम लालसा हुई जिसके लिये इन्हें अच्छे-अच्छे विद्वान मिल ता। थोड़े दिनों में ही इनकी बुद्धि विकसित हुई और ये संस्कृत लिखने लग गये।

हर्ष के राजदरबार में जाना—हर्ष की बाल्यावस्था की लता से लाभ उठाकर कुछ चुगली करनेवालों ने बाण के प्रति ा हर्ष को उदासीन सा कर दिया था। किन्तु एक दिन हर्ष चचेरे भाई कृष्ण के मेखलक दूत ने बाण को पत्र दिया और के दरबार में चलने की प्रार्थना भी की। बाण यह सन्देश र पहले तो कुछ समय विचार-सागर में निमग्न रहे, किन्तु अन्त चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर पहले तो हर्ष ने इन्हें अनादर की से देखा किन्तु बाण के परिचय देने पर हर्ष मुग्ध हो गये। इसके बाण का राजदरबार में उत्तरोत्तर मान बढ़ता गया। अन्ततो- ा ये अपनी योग्यता से राजसभा के सर्वश्रेष्ठ पण्डित कहलाने । दीर्घ प्रवास के बाद अब एक बार बाण घर आये तो उनसे ों ने हर्ष चरित सुनाने की प्रार्थना की, जिसे संक्षेप से उन्होंने ा दिया।

हर्ष के बाद—हर्ष की मृत्यु हो जाने पर उसके राज्य में शान्ति का साम्राज्य छा गया। शत्रुओं ने उसके राज्य सिंहासन अधिकार कर लिया। यह स्थिति देखकर बाण ने घर की

रास्ता लिया। घर पर उनके सम्बन्धियों ने बाण का खूब स्व
किया। बाण के दो पुत्र थे, जिनके बारे में वे स्वयं मौन हैं।
एक किंवदन्ती है कि जब बाण मृत्यु शय्या पर थे तो उन्होंने
दोनों पुत्रों से कादम्बरी का उत्तरार्द्ध लिखने को कहा। सब
बड़े लड़के ने अपनी कविता शक्ति का परिचय देने के विचा
सामने स्थित सूखे वृक्ष को देखकर कहा 'शुष्को वृक्षस्तिष्ठ
जिसे सुनते ही बाण ने अपने कान बन्द कर लिये। इसके बाद
लड़के ने, जिसका नाम सम्भवतः भूषणभट्ट था उसने उसी वृ
विषय में कहा 'नीरसतरुर्विलसत्यग्रे' जिसे सुन बाण बड़े प्र
हुए और कादम्बरी का उत्तरार्द्ध लिखने की आज्ञा दी। थोड़े दि
भूषणभट्ट ने पिता का अधूरा काम पूरा किया।

रचनाएँ और उनका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व

बाण की दो मुख्य रचनाएँ हैं (१) हर्षचरित (२) कादम्बरी। हर्ष
इस ग्रन्थ का नाम लेते ही संस्कृत गद्य-साहित्य की सम्
प्रथम पुस्तक का ज्ञान होता है। इसमें ८ उच्छ्वास हैं। पहले दो
की आत्म कथा से भरे पड़े हैं और बाकी के छः हर्ष जीव
वर्णन से। वर्धनवंश के प्रवर्त्तक से लेकर राज्यश्री की मुक्ति त
वर्णन इस ग्रन्थ में है। संस्कृत-साहित्य में जो स्थान हर्ष-चरित
उसे लोग भली प्रकार जानते हैं। हर्ष के समय की राजनी
सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था का इसमें विशद वर्णन है।

कादम्बरी—इस ग्रन्थ की टक्कर लेने वाली संस्कृत गद्य सा
में शायद ही कोई पुस्तक हो। इसका अध्ययन करते समय
पाठक अवश्य अपने को प्रेम साहित्य में निमग्न कर लेते
'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' की उक्ति से अपने को कृतकृत्य
वाले बाण ने अपनी रचना में पाञ्चाली रीति का आश्रय लिय
ऐतिहासिक दृष्टि से कादम्बरी हर्ष के समय का अच्छा वर्णन करत

अभ्यास

[क] हर्ष वर्धन के पूर्व भारतीय राजनैतिक संगठन के बारे में आप क्या नते हैं ? विशद वर्णन करो।

[ख] हर्ष वर्धन की विजयों का परिचय देकर उसके शासन-प्रवन्ध पर ट लिखो।

[ग] क्या हर्ष का विद्या प्रेम और चरित्र सर्वोत्कृष्ट था ?

[घ] 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' के आधार पर बाण का इतिहास में ान निश्चित कीजिये।



नवम खंड

पृथ्वीराज चौहान (राजपूत काल)

राजपूत और भारत—हर्ष की मृत्यु के बाद भारत वर्ष का जनैतिक संगठन अस्तव्यस्त हो गया था। इसलिये सर्वत्र अरा-कता का बोलबाला था। 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' की उक्ति ारों ओर चरितार्थ हो रही थी। इस बहती गंगा में राजपूतों ने दिल खोलकर डुबकियाँ लगाईं और लाभ उठाकर उत्तरी भारत अधिकार जमा लिया। इस प्रकार देश में बरसाती मेंढकों की ह चारों ओर छोटे-छोटे राज्यों में राजा लोग अपने-अपने राज्य यमों की ध्वनि करने लगे। यह ध्वनि कई शताब्दियों तक भिन्न २ में होती रही। इसका भारत पर क्या कुप्रभाव पड़ा और देश किस ह नष्ट-भ्रष्ट हुआ पाठकगण आगे विस्तार से पढ़ेंगे। उस समय क राजा अपने को शक्तिशाली समझ दूसरे पर अपनी ता की धाक जमाना चाहता था। फलस्वरूप अपनी शक्ति का

परिचय देने के विचार से दूसरे राज्य पर आक्रमण करता था। काल को गृहकलह युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगा। एक भारत के राजनैतिक संगठन का यह जर्जर ढाँचा था और दू ओर तुर्क लोग संगठित शक्ति से भारत की ओर बढ़ रहे थे। राजपूत राजा अपनी इस विनाशकालीन अवस्था से भली प्र परिचित थे। अतः उन्होंने राजनैतिक संगठन का प्रयत्न कि जिसमें उन्हें सफलता बहुत कम मिली, क्योंकि आपसी वैम परकाष्ठा पर था। राजा निरंकुश थे, उन्हें देश की तनिक भी चि न थी। इन राजपूतों की उत्पत्ति के बारे में बड़ा मतभेद है। विदेशी इतिहासकार गुर्जर आदि आक्रमणकारियों की स समझते हैं। उनके कथनानुसार इनकी आबू पर्वत पर शुद्धि हुई यह वंश हिन्दू रूप में चल पड़ा। (२) किन्तु भारतीय वि इस कथन को कपोलकल्पित समझते हैं। क्योंकि इनके वि से संस्कृत के 'राजपुत्र' शब्द का अपभ्रंश राजपूत है। (३) रा के विचार से वे वैदिक काल के सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्ष की सन्तान हैं। प्रायः यह मत स्वीकार भी किया जाता है, क्य राजपूतों की आकृति आर्यों से मिलती-जुलती है। (४) कुछ रा अपने को अग्निकुल का कहते हैं। क्योंकि उनका विश्वास परशुराम ने जब सब क्षत्रियों का संहार कर दिया तब ब्राह्म अपनी रक्षा के लिये क्षत्रियवंश की उत्पत्ति के लिये यज्ञ कि फलस्वरूप उनकी रक्षा के लिये चार वीर पैदा हुए, जिन्होंने रा वंशों की स्थापना की (१) परमार (२) परिहार (३) चालुक्य (४) चौ

पृथ्वीराज चौहान और उसकी विजय—उपरोक्त चार में निर्दिष्ट चौहान वंश का पराक्रमी और स्वतन्त्र भारत का अ राजा पृथ्वीराज चौहान तृतीय था। यह बड़ा देश भक्त और नीतिज्ञ राजा था। इसने कई बार राजपूतों को संगठित कर आक्र कारियों के दाँत खट्टे किये। इसे युद्ध करने में बड़ा आनन्द

श्री शिक्षा मन्त्री का भवा

। ११७९ ई० से ११९३ तक इसने राज्य किया। इस राज्य काल उसने प्रचलित प्रणाली के अनुसार अनेक राज्यों पर आक्रमण किया और उन्हें अपने अधीन कर लिया। बुन्देलखण्ड और महोबा दुर्ग जिनमें विशेष महत्त्व रखते हैं। पृथ्वीराज की अजेय सेना चारों ओर यश प्राप्त कर चुकी थी। किन्तु इससे प्रायः और राजाओं हृदय में कटुता और द्वेष के भाव पैदा हो गये, जिनमें जयचन्द का नाम अवश्य उल्लेखनीय है। कन्नौज के गहड़वाल का भूपति जयचन्द अपने से किसी को बड़ा मानने के लिये तैयार न था। फलस्वरूप उसने अपनी दिग्विजय के उपलक्ष्य में राजसूय यज्ञ के साथ-साथ अपनी लड़की संयोगिता का स्वयंवर भी किया। केवल पृथ्वीराज को छोड़कर सब राजाओं को निमन्त्रण भेजा। बुलाने की कौन कहे, उल्टा उसका अपमान करने के विचार से राज मण्डप के मुख्य द्वार पर उसकी एक भद्दी मूर्ति बनवा कर स्थापित करवा दी। इस समाचार ने पृथ्वीराज को आगबबूला कर दिया। पर पृथ्वीराज और संयोगिता के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम अंकुर पहले से ही जम चुका था। इस लिये पृथ्वीराज अपने अपमान का बदला चुकाने के विचार से स्वयंवर मण्डप के बाहरी भाग में छिपकर खड़ा हो गया। इधर स्वयंवर से अलसाई आँखों वाली संयोगिता ने वर-माला पृथ्वीराज की मूर्त्ति को छोड़कर किसी को नहीं पहनाई। इसके बाद संयोगिता को अपने घोड़े पर बैठाकर पृथ्वीराज अपने राज्य में विजय के साथ आ पहुँचा, किन्तु इस व्यवहार से जयचन्द उसका जानी दुश्मन हो गया।

शहाबुद्दीन गोरी और पृथ्वीराज—इसके बाद भारत के प्रसिद्ध पराक्रमी पृथ्वीराज और जयचन्द के इस द्वेष की धूम प्रायः सर्वत्र फैल चुकी थी, जिसका लाभ—गोरी की ललचाई आँखों ने शीघ्र ही ११९१ ई० में भारत पर एक बड़ी सेना से आक्रमण कर प्राप्त करना चाहा। किन्तु इधर भारत की गतिविधि से सर्वज्ञ पृथ्वीराज

ने भी एक राज्य संघ निर्माण किया और संगठित सेना से गोरी की बढ़ती सेना का सामना किया। थानेश्वर के समीप तलावड़ी के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। राजपूतों की देश भक्ति पूरित तलवारों से शहाबुद्दीन गोरी की सेना गाजर-मूली की तरह कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगी। चारों ओर हाय तोबा हाय तोबा की पुकार से गगनमण्डल गूञ्ज उठा था। सेना की तो बात जाने दीजिये, स्वयं गोरी ने 'जान बची औ लाखों पाय' कहकर सन्तोष किया। सच है यदि उस दिन गोरी को उसके स्वामिभक्त सेवक ने बचाया न होता तो निश्चय उस यवन कुल कलंक का किसी राजपूत के हाथों काम तमाम हो गया होता।

शहाबुद्दीन गोरी को अपनी पराजय की याद सदा बनी रहती थी। इधर भारत कुलकलंक जयचन्द ने 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' के कथन को सार्थक करने के लिये गोरी को पुनः भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। निमन्त्रण पाते ही गोरी ने अपने मन की मुराद (इच्छा) पूरी करने के विचार से पूरी सजधज के साथ ११९२ में द्वितीय आक्रमण कर दिया। कहा जाता है कि इस बार शहाबुद्दीन गोरी अपने साथ एक लाख बीस हजार घुड़सवार सैनिक लेकर आया था। पृथ्वीराज ने पुनः देशभक्त क्षत्रियों का संगठन किया और उपरोक्त मैदान में जा डटा। राजपूतों की शक्ति के आगे अब भी गोरी देरतक टिक न सका, किन्तु 'घर का भेदी लंका ढाय' उक्ति सत्य हुई और भारतीयता के शत्रु जयचन्द की चाल से राजपूत हार गये। पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बनाकर गोरी के सम्मुख लाया गया। अब तक गोरी ने यह कहा कि इसे जान से मत मारो, क्योंकि इसने अनेक बार मुझे प्राण दान दिया है। अतः केवल इसकी आंखें निकाल लो। इसके बाद अपने कवि चन्दबरदायी के साथ पृथ्वीराज सरस्वती नदी के किनारे मृत्यु के घाट उतार दिया गया ऐसा कहा जाता है। इसके बाद भारत की स

तुर्कों के गगन चुम्बी महलों का आश्रय लिया। इसके बाद क्या हुआ कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ इतना अवश्य है कि विदेशी लोगों ने हमें इतना निर्धन बना दिया कि आज तक हम अपने को संभाल नहीं पाये।

अभ्यास

[क] 'हर्ष वर्धन की मृत्यु के बाद भारतीय संगठन नष्ट भ्रष्ट हो गया' इस उक्ति से आप कहाँ तक सहमत हैं।

[ख] राजपूतों की उत्पत्ति के बारे में आप क्या जानते हैं ?। उत्तर दो।

[ग] पृथ्वीराज की विजय और पराजय के बारे में आप क्या जानते हैं, संक्षिप्त परिचय दो।

[घ] जयचन्द, शहाबुद्दीन गोरी और संयोगिता पर नोट लिखो।

—०—

दशम खण्ड

मुस्लिमकाल

भारत में मुस्लिम शासन—भारतीय मुस्लिम शासन पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि इस शासन की सर्वप्रथम यहाँ नींव किसने डाली। कुछ लोग महमूद गजनवी को और कुछ मुहम्मद गोरी को इस शासन का जन्मदाता समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि महमूद ने मुहम्मद गोरी से अधिक स्थानों पर विजय प्राप्त की और कहीं भी पराजित नहीं हुआ। किन्तु महमूद का आक्रमण केवल भारत को लूटने और इस्लाम धर्म प्रचार के लिये ही था। भारत में मुस्लिम शासन की नींव डालना उसकी शक्ति के बाहर की वस्तु थी। पञ्जाब को छोड़कर उसकी विजय का कहीं स्थायी प्रभाव भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसके विपरीत

मुहम्मद गोरी भली प्रकार जानता था कि हिन्दुओं का राजनै
संगठन बड़ा शिथिल है। इसीलिये उसने समय से लाभ उठा
यहाँ मुस्लिम राज्य की नींव डालने का प्रयास किया। इस
विजय स्थायी थी। अपने योग्य सेनापतियों के सहयोग से गोरी
सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया और मुस्लिम शा
की स्थापना की। अतः मुहम्मद गोरी को ही मुस्लिम शासन
संचालक समझना चाहिये।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु के समय भारत में मुस्लिम शासन अ
व्यस्त था। लोगों का विचार था कि यह शासन कुछ ही दिन
में अपना सर्वनाश कर लेगा। किन्तु गोरी के योग्य अधिकारि
ने स्थिति पर काबू पा लिया और मुस्लिम शासन की जड़ भारत
कई शताब्दियों के लिये सुदृढ़ कर दी। १२०६ में गोरी की मृ
हुई और उसके बाद १२०६ ई० से १५२६ ई० तक जिन लोगों
राज्य किया वे सुल्तान या पठान के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन शा
वंशों को हम पाँच भागों में बाँट सकते हैं—

१—गुलाम वंश	१२०६ से १२९० ई० तक
२—खिलजी वंश	१२९० से १३२० तक
३—तुगलक वंश	१३२० से १४१४ तक
४—सैयद वंश	१४१४ से १४५१ तक
५—लोदी वंश	१४५१ से १५२६ तक

गुलाम वंश और कुतुबुद्दीन ऐबक—यह वंश भारत में पहि
मुस्लिम राजवंश समझा जाता है। इसकी नींव मुहम्मद गोरी के दा
कुतुबुद्दीन ऐबक ने डाली। इस वंश के सब राजा गुलाम रह चु
थे या गुलामों की सन्तान थे। अतः यह गुलाम वंश के नाम
सम्बोधित किया जाता है। कुतुबुद्दीन ऐबक गोरी का एक तु
गुलाम था। किन्तु अपने गुणों से वह सेनापति बन गया। भा
की विजय में उसने मुहम्मद गोरी की बड़ी सहायता की।

कारण था गोरी गजनी लौटते समय उसे अपना उत्तराधिकारी बना गया। गोरी की विजयों को सुदृढ़ करते हुए इसने गुजरात, बुन्देलखण्ड, बंगाल और बिहार को इस्लामी राज्य में सम्मिलित किया। १२०६ ०में मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद यह भारत का स्वतन्त्र शासक और गुलाम वंश की नींव डालने वाला हुआ। इस प्रकार वह भारत का प्रथम मुस्लिम शासक कहलाता है। कुतुबुद्दीन एक योद्धा और वीर होने के साथ-साथ दया आदि गुणों के लिये भी प्रसिद्ध था। उसकी उदारता का ही फल था कि लोग उसे 'लाख बख्श' जानते थे। उसका न्याय भेदभाव शून्य था। राज्य की स्थिति सुदृढ़ करने के विचार से उसने अपने कई सरदारों के घरों में विवाह सम्बन्ध भी किये। देहली की 'कुतुब मीनार' इसने बनवानी आरम्भ की, जिसकी पूर्ति उसके एक गुलाम अल्तमश ने की, क्योंकि इसी बीच १२१० में कुतुबुद्दीन लाहौर में चौगान खेलते समय घोड़े से गिरकर मर गया।

अल्तमश—कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आरामशाह गद्दी पर बैठाया गया, किन्तु उसकी अयोग्यता ने उसे शीघ्र ही 'पुनर्मूषिको भव' की उक्ति में परिणत कर दिया। इसके बाद अल्तमश जो पहले कुतुबुद्दीन का एक गुलाम था। किन्तु बाद में उन्नति करते-करते उसका सेनापति और दामाद बन बैठा। १२१० में कुतुबुद्दीन के अयोग्य पुत्र आरामशाह को गद्दी से उतार अब उसने अपने हाथों राज्य की बागडोर ली। वह एक बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ था। अतः उसने थोड़े ही समय में सर्वत्र अपनी विजय का डंका पीट दिया। उसके निम्नलिखित कार्य वर्णनीय हैं:—

(१) राज्यसिंहासन पर पदार्पण करते ही अल्तमश को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद शीघ्र ही कई सूबेदारों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पंजाब और गजनी में ताजुद्दीन यल्दज, सिन्ध में नासिरुद्दीन कुबाचा और

बंगाल में खिलजियों का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, कि इन विद्रोही सरदारों को अल्तमश ने थोड़े ही समय में अ[illegible] कर लिया।

(२) राजपूतों पर कड़ी दृष्टि रखने के विचार से [illegible] रणथम्भोर, मण्डू, ग्वालियर, मालवा और उज्जैन आदि राज्यों अपने वश में किया। इस प्रकार उसने प्रायः उत्तरी भारत अपनी धाक जमा ली।

(३) कुतबमीनार जिसका शिलान्यास स्वयं कुतुबुद्दीन [illegible] गया था उसको इसने पूर्ण करवाकर अपनी स्वामिभक्ति [illegible] परिचय दिया।

(४) अल्तमश के राज्यकाल में पहली बार मंगोल भारत[illegible] सीमा तक पहुँचे, जिनका मुखिया चंगेजखाँ था। १२२१ में चंगे[illegible] अपने शत्रु ख्वारिजम के शासक जलालुद्दीन का पीछा करता [illegible] नदी के तट पर पहुँचा। जलालुद्दीन सिन्ध छोड़कर भाग ग[illegible] इससे सिन्ध और पञ्जाब में खलबली मच गई। किन्तु च[illegible] खाँ सिन्ध के समीप के प्रदेशों को लूट खसोटकर वापस चला ग[illegible] इससे भारत एक बहुत बड़ी कठिनाई से बच गया। कहा [illegible] है कि उसके लौटने में भारत की अत्यधिक गर्मी कारण [illegible] उसके लौट जाने पर अल्तमश ने उन प्रान्तों को अपने अधि[illegible] में ले लिया। (५) माण्डोगढ़ को जीतकर उसने मेवाड़ [illegible] गहलोत राजपूतों पर आक्रमण किया, किन्तु बुरी तरह परा[illegible] हुआ। अन्त में बिमार पड़ा और १२३६ में मर गया।

रजिया बेगम—अल्तमश की मृत्यु के बाद उसका [illegible] लड़का रुकुद्दीन सिंहासन पैर बैठा, किन्तु शीघ्र ही हटा दिया ग[illegible] इसके बाद, अल्तमश की होनहार लड़की रजिया ने शास[illegible] बागडोर अपने हाथ में ली। रजिया अपने पिता के राज्यका[illegible] भी शासन कार्यों में भाग लेती थी। जब कभी अल्तमश [illegible]

शत्रुओं का सामना करने जाता था प्रायः राज्य प्रबन्ध रजिया को सौंप जाता था। रजिया बड़ी साहसी और योग्य स्त्री थी। पुरुषों का पहरावा पहनकर वह दरबार में जाती थी और युद्ध के समय सेना का नेतृत्व भी स्वयं करती थी। किन्तु उसके इस बर्ताव से कुछ कट्टर पन्थी मुसलमान और पठान रुष्ट थे। इधर उसने एक हब्शी घुड़साल के दारोगा जिसका नाम याकूत था, उससे गुप्त प्रेम कर लिया। फलस्वरूप उसके लाहौर और बठिंडा के सरदारों ने विद्रोह किया। जब रजिया उस विरोध को शान्त करने के लिये गई तो बठिंडा के सरदार अल्तूनियाँ ने उसे बन्दी कर लिया। बाद में रजिया ने उस सरदार से विवाह कर लिया और दिल्ली को राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगी। किन्तु पति सहित १२४० में अपने भाई बहराम के हाथों मारी गई।

सुल्तान नासिरुद्दीन—रजिया के बाद उसका भाई बहराम और भतीजा अलाउद्दीन क्रमशः राज्यसिंहासन पर बैठे, किन्तु अयोग्यता ने उन्हें हटने के लिये बाध्य किया। इसके बाद राज्य सिंहासन पर अल्तमश का दूसरा बेटा नासिरुद्दीन बैठा। यह बड़ा नेक और शुद्ध हृदय का बादशाह था। अपने सादे जीवन के कारण ही वह 'दरवेश बादशाह' कहलाता था। राज्य का एक पैसा भी निजी कार्यों में व्यय करना वह पाप समझता था। घर का सब कार्य उसकी धर्मपत्नी स्वयं अपने हाथों करती थी। कुरान लिखकर जो पैसा मिलता उसी से वह घर का कार्य चलाता था। बलबन जैसा योग्य मन्त्री जो उसका ससुर भी था, उसे पाकर नासिरुद्दीन अपने को सौभाग्यशाली समझता था। इस प्रकार बलबन ने २० वर्ष तक अपने दामाद के राज्यकार्य को बड़ी योग्यता से निभाया और नासिरुद्दीन की मृत्यु १२६६ई०में हो गई और राज्य का मालिक बलबन बन बैठा।

गियासुद्दीन बलबन—राज्य गद्दी पर बैठते समय राज्य-कार्य से भली प्रकार परिचित होने के कारण बलबन को कोई विशेष

असुविधा नहीं हुई। सबसे पहले मंगोलों के डर से उसने कई न
किले बनवाये और पुराने किलों की मरम्मत कराकर वहाँ स
सेना रखी, ताकि मंगोल आगे न बढ़ सकें। स्वतन्त्रता के लि
विद्रोह करनेवाले राजपूतों का उसने बड़ी निर्दयता से दमन किय
इस प्रकार बलबन ने अपनी योग्यता से देश को बाहरी और भी
विद्रोहों एवं आक्रमणों से बचाया। बलबन के समय बंगाल
विद्रोह विशेष महत्त्व रखता है, जिसे दबाने के लिये बादशाह स
गया। जिसमें बंगाल का शासक तुगरल मारा गया। शा
बलबन ने अपने छोटे लड़के बगरा खाँ के हाथ दिया और भू
शासक के साथियों के साथ अमानवीय बर्ताव किया।

बलबन का राज्य प्रबन्ध और चरित्र—अपने राज्य में
ये परिवर्तन किये, १—अमीरों और वजीरों की शक्ति कम कर
२—न्याय विभाग इतना दृढ़ किया कि कोई व्यक्ति अपने नौकरों
भी कष्ट न दे सकता था, ३—गुप्तचरों के विभाग का संशोधन कि
४—मदिरा पान बन्द कर दिया, ५—प्रचलित कुरीतियों का
कर दिया। इसलिये दास वंश का, वह सबसे शक्तिशाली बादश
माना जाता है। न्यायप्रियता उसके हृदय में सदा भरी रहती थी
वह अपने सम्बन्धियों के साथ भी पक्षपात न करता था। रा
दरबार में उसका इतना प्रभाव था, कि शोर-गुल करने की कौन
कोई खुलकर हँस भी न सकता था। क्रोधित होने पर वह
दण्ड देता था। फिर भी कहा जा सकता है कि वह एक अ
शासक था। १२८५ में उसका लड़का मुहम्मद जिसे उसने मंगो
के आक्रमण रोकने के लिये नियुक्त किया था, वह मुगलों के हा
से मारा गया। इस समाचार से बलबन को बड़ा धक्का
क्योंकि जीवन में वह उसे सबसे प्रिय समझता था। उसी
में बलबन भी १२८६ में चल बसा। इसके बाद बलबन

पोता कैकुबाद गद्दी पर बैठा, किन्तु अयोग्यता ने उसे कुछ करने नहीं दिया। इसके बाद गुलाम वंश कथावशेष रह गया।

खिलजी वंश और जलालुद्दीन—सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी वंश का संचालक था। वह ७० वर्ष की आयु में दिल्ली की राज्य-गद्दी पर बैठा। कुछ अवस्था के प्रभाव से और कुछ जन्मजात गुणों के कारण वह बड़ा सरल और दयालु था। यही कारण था कि उसकी राजनीति सफल नहीं हुई। चारों ओर लोगों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया था। पहले तो रणथम्भोर पर उसने आक्रमण किया, किन्तु राजपूतों के तनिक से विरोध पर वह शीघ्र लौट आया। इधर कुछ मुगलों ने दिल्ली के पास अपना स्वतन्त्र स्थान बना लिया और उसे 'मुगलपुरा' की उन्होंने संज्ञा दी। जलालुद्दीन के शासन काल की मुख्य घटना देवगिरि का आक्रमण है। जलालुद्दीन ने अलाउद्दीन को जो उसका भतीजा और दामाद था १२९४ में अवध प्रान्त के कड़ा स्थान का शासक नियुक्त किया। वह बड़ा वीर और साहसी था। कुछ दिनों बाद अपने चाचा से बिना आज्ञा लिये उसने देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के राजा रामचन्द्रदेव को परास्त कर अलाउद्दीन के हाथ अतुल सम्पत्ति लगी। इस विजय पर जलालुद्दीन बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने भतीजे के स्वागतार्थ कड़ा स्थान पर गया, किन्तु लोभी अपने भतीजे के हाथों वह मारा गया।

अलाउद्दीन खिलजी—अपने चाचा और जलालुद्दीन की हत्या कर अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा। राज्यसिंहासन पर बैठते ही उसने लोगों को खूब रुपया बाँटा, ताकि जनता जलालुद्दीन की मृत्यु को भूल कर उसका साथ दे। बीस वर्ष के राज्यकाल में अलाउद्दीन ने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। उसने उत्तर और दक्षिण पर विजय करने के साथ साथ मुगलों के आक्रमणों की रोक-थाम का भी अच्छा प्रबन्ध किया। उसने अपने राज्यकाल में इन निम्नलिखित

स्थानों पर विजय प्राप्त की, (१) गुजरात—गुजरात एक उपजाऊ प्रान्त मानकर अलाउद्दीन ने अपने सेनापति उलगखां विजय करने के लिये वहां १२९७ में भेजा। वहाँ के राजा कर्णदेव की हार हुई और यवन सेनापति ने वहाँ खूब लूट-मार की। (२) रणथम्भोर—यह राजपुताने का प्रसिद्ध दुर्ग था। सन् १३०१ अलाउद्दीन ने उस पर स्वयं चढ़ाई की और कई दिनों के परिश्रम के बाद वहाँ के राजा हम्मीरदेव को धोखे से मार किले का स्वामी बना। (३) चितौड़—चितौड़ के राजा भीम की रानी पद्मिनी अपनी सुन्दरता के लिये उस समय चारों प्रसिद्ध थी। अलाउद्दीन की प्रबल इच्छा थी कि ऐसी सुन्दर मेरे अन्तःपुर में रहनी चाहिये। इसी विचार से उसने सन् १३०३ चितौड़ पर आक्रमण किया। राजपूतों ने अपनी वीरता का प्रकार से परिचय दिया, किन्तु हार गये और चितौड़ किला बादशाह के हाथ लगा। कामी बादशाह ने रानी पद्मिनी को बहुत खोजा, वह मदान्ध यह न जान सका कि भारतीय हिन्दू नारियाँ पर पुरुष स्पर्श की अपेक्षा अग्नि में जल जाना मंगल समझती हैं। बहुत ढूँढ़ने बाद अलाउद्दीन को १० हजार रमणियों की राख की ढेर में पद्मि दृष्टिगोचर हुई। उस पर वह बड़ा दुःखी हुआ और शासन अ बड़े बेटे खिज्रखाँ को सौंप कर स्वयं वापस आ गया। (४) मालवा मालवा विजय के लिये १३०५ में सेना भेजकर अलाउद्दीन ने उ चन्देरी आदि स्थान जीतकर प्रायः उत्तरी भारत पर अधिकार ज लिया। (५) दक्षिणी विजय—उत्तरी भारत पर अधिकार जमा लेने बाद अब बादशाह के हृदय में दक्षिण विजय की लालसा उत्प हुई। इसकी पूर्ति के लिये उसने अपने सेनापति मलिक काफूर उचित समझा। मलिक काफूर ने सन् १३११ में देवगिरि, वारंगल, द्वार समुद्र और मथुरा को जीत लिया। इसके बाद वह रामेश्वर तक बढ़ गया और वहाँ एक मस्जिद भी बनवाई। दिल्ली लौट

समय मलिक काफूर अपने साथ पर्याप्त धन लाया। इस प्रकार अलाउद्दीन का शासन अब पूरे भारत पर हो गया।

अलाउद्दीन का राज्य प्रबन्ध—अलाउद्दीन केवल योद्धा ही न था, अपितु एक अच्छा राज्य प्रबन्धक भी था। उसके राज्यकाल में उसके लिये कुछ षड़यन्त्र भी हुए, जिनके निवारण के लिये उसने ये काम किये—(१) मन्त्री और सरदार आपस में राजाज्ञा के बिना नहीं मिल सकते। ऐसा इस लिये किया गया कि सरदार या मन्त्री षड़यन्त्र न कर सकें, (२) सरदार और मन्त्रियों की संपत्ति छीन ली, (३) गुप्त विभाग को सतर्क कर दिया, (४) लगान में वृद्धि कर दी, (५) सेना में वृद्धि कर दी, ताकि विद्रोह सरलता से दबाया जा सके। सैनिकों को वेतन नगद मिलता था। घोड़ों को अङ्कित करने की रीति अलाउद्दीन ने हीं चलाई थी। (६) हरेक वस्तु का भाव नियत कर दिया। नियम उल्लंघन करनेवाले को कठोर दण्ड मिलता था। (७) अन्न संग्रह करना जिससे किसी समय भी प्रजा को अन्न के लिये कष्ट न उठाना पड़े। मदिरा पान पर प्रतिबन्ध लगाया गया और राजा ने स्वयं भी मदिरा पीना बन्द कर दिया। उपरोक्त गुण होते हुए भी यह मानना पड़ता है कि वह बड़ा लालची और स्वार्थी बादशाह था। अन्त में अपने ही सेनापति काफूर के हाथों मारा गया। ऐसा कहा जाता है कि उसे विष दिया गया था। अलाउद्दीन के मरते ही मलिक काफूर ने उसके नन्हें बच्चे को गद्दी पर बैठाया। किन्तु काफूर शीघ्र ही किसी सेनापति द्वारा मार दिया गया। इस प्रकार खिलजी वंश का अन्त हो गया।

तुगलक वंश और गियासुद्दीन तुगलक—तुगलक वंश का संस्थापक गियासुद्दीन ही था। उसका पिता एक तुर्क था, किन्तु माता पञ्जाब के एक जाट वंश की थी। वह बड़ा दयावान और योग्य शासक था। राज्य सिंहासन पर बैठने से पूर्व वह पञ्जाब प्रान्त

का सूबेदार था। मुगलों के आक्रमणों से रक्षा पाने के लिये उसने उचित प्रबन्ध किया था। बंगाल के विद्रोह की सूचना पाते ही सुलतान ने स्वयं जाकर उसका अन्त कर दिया। किन्तु जब लौटा तो उसके पुत्र जूना खाँ ने उसके स्वागत के बहाने षड्यन्त्र भरा लकड़ी का भवन बनवाया, जिसमें दबकर सुलतान की मृत्यु हो गई। ऐसा कहा जाता है कि गियासुद्दीन की मृत्यु उसके लड़के जूना खाँ की राज्य लिप्सा ही कारण थी।

मुहम्मद तुगलक—मुहम्मद तुगलक का वास्तविक नाम जूना खाँ था। वह बड़ा विद्वान् था। नीति, ज्योतिष, तर्क, गणित और वैद्यक आदि सभी शास्त्रों का उसे ज्ञान था। वह एक अच्छा कवि और लेखक भी था। स्मरण शक्ति के लिये वह उस समय अपना सानी न रखता था। मुहम्मद तुगलक अपनी न्यायप्रियता के लिये बड़ा विख्यात था। हिन्दुओं के साथ भेदभाव प्रायः नहीं करता था। निःशुल्क औषधालय और चिकित्सालय उसने पर्याप्त खुलवाये, ताकि निर्धन जनता भी लाभ उठा सके। सहानुभूति का बर्ताव करना वह अपना कर्त्तव्य समझता था। अपने धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करता था। वह सदैव दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता था। किन्तु उपरोक्त गुणों के साथ-साथ उसमें अवगुण भी थे। वह बड़ा हठी और क्रोधी था, जिसका फल यह होता था कि कभी २ उसे अच्छी बात भी बुरी लगती थी। उसे गुणों और अवगुणों का एक अनोखा मेल कहा जा सकता है। वह निर्दयी किन्तु दानी, कट्टर पन्थी किन्तु जातिगत द्वेष से रहित, अभिमानी किन्तु कृपाशील था। मुहम्मद तुगलक ने कई ऐसे कार्य किये, जिनके लिये वह बड़ा कुख्यात है :—

(१) राजधानी परिवर्तन—मुहम्मद तुगलक का शासन पूरे भारत पर था। इसलिये वह चाहता था कि राजधानी ऐसी जगह बनाई जाय, जहाँ से सारे देश का शासन अच्छी तरह

सके। इस इच्छा की पूर्ति के लिये उसने दक्षिण में देवगिरि नगर चुना और उसका नाम दौलताबाद रखा। वहाँ अच्छे-अच्छे कार्यालय, मस्जिद और राजमहलों का निर्माण करवाया। राजधानी परिवर्तन की सूझ तो निःसन्देह देश के लिये बड़ी लाभप्रद थी। किन्तु सुल्तान ने प्रजा को भी दौलताबाद चलने की बड़ी कठोरता से आज्ञा दी। फलतः जनता ७०० मील का चक्कर काट कर वहाँ पहुँची, किन्तु रास्ते में कुछ लोग मर गये और शेष रुग्ण पड़े। कुछ दिनों बाद पुनः प्रजा को देहली लौटने की आज्ञा दी, जो उसकी मूर्खता की पराकाष्ठा थी।

(२) मुगलों को धन देना—राजधानी परिवर्तन का बुरा प्रभाव एक यह हुआ कि उत्तरी भारत के सूबेदारों ने विद्रोह कर दिया। यह स्थिति देख मुगलों ने भी भारत पर आक्रमण किया, उन्हें सुलतान ने अतुल धन राशि देकर लौटा दिया। इससे मुगलों का साहस बढ़ गया और निरन्तर आक्रमण करने लगे।

(३) चीन और ईरान पर आक्रमण—सुल्तान के हृदय में ईरान पर विजय पाने की बड़ी लालसा थी। इसलिये उसने लगभग ३७०००० सवारों की सेना संगठित की। कुछ कठिनाइयों के आने पर ईरान की चढ़ाई का विचार छोड़ और सेना में कमी कर दी गई। फल यह हुआ कि सेना ने जनता को लूटना आरम्भ किया। इसके बाद १ लाख योद्धा चीन विजय के लिये सुल्तान ने भेजे। उनमें कुछ जाते समय बर्फ में पिघल कर मर गये, जो बचे, उन्हें चीन देश वासियों ने ठिकाने लगा दिया। इसके बाद भी जो बच गये उन्हें पहाड़ियों ने यमलोक का रस्ता दिखाया।

(४) तांबे की मुद्रा—सुल्तान की उदारता एवं मूर्खता पूर्ण कार्यों से राजकीय कोष प्रायः खाली हो गया था। अतः मुहम्मद तुग़लक ने तांबे की मुद्रा चलाई और उसकी मान्यता सोने चान्दी

मुद्रा के बराबर घोषित की। लोगों ने इससे खूब लाभ उठा कर
और नकली मुद्राओं से राज्य कोष भर दिया। इस मूर्खता का
ज्ञान होते ही सुल्तान ने तांबे की मुद्राएँ बन्द करवा दीं, क्यों
इन्हें विदेशी लोग नहीं लेते थे। इस तरह भारत के व्यापार को
बड़ा धक्का लगा। इसके बाद सुल्तान ने तांबे की मुद्राओं को रा
कोष में जमाकर जनता को सोने चाँदी की मुद्राएँ दीं। इससे
बिलकुल रिक्त हो गया।

(५) दोआबे का कर—कोष की पूर्ति के लिये सुल्तान
दो आब जो बड़ा उपजाऊ प्रदेश समझा जाता था, वहाँ कृषि
की दर खूब बढ़ा दी। कर की वसूली में बड़ी निर्दयता का व
किया गया। फलतः किसान खेत छोड़कर भाग गये। इधर
न हुई, जिससे देश में अकाल पड़ गया। यह ठीक है अकाल पी
को सहायता दी गई, किन्तु विलम्ब से।

उपरोक्त त्रुटियों का फल यह हुआ कि तुगलक वंश लड़
गया। जिसका कारण मुहम्मद तुगलक का क्रोधी स्वभाव,
योजनाएँ, भयानक अकाल, धार्मिक उदारता, विदेशियों को
पद देना और देशी मुसलमानों का रोष कहा जा सकता है।

फिरोज शाह तुगलक—मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के
उसका चचेरा भाई फिरोजशाह गद्दी पर बैठाया गया। क्योंकि मुहम्मद
का कोई पुत्र न था। फिरोज शाह का राज्य प्रबन्ध इतना अच्छा
आज वह तुगलक वंश का सर्वोत्तम बादशाह समझा जाता
वह एक राजपूत स्त्री का पुत्र था। किन्तु हिन्दु माँ का लाल
हुए भी उसमें मुस्लिम कट्टरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। हि
पर जजिया कर लगाना उसी के मस्तिष्क की उपज थी। उसके
कार्य में मुल्लाओं की प्रधानता थी। फल यह हुआ कि
जनता पिसने लगी। इसने कुछ सुधार अवश्य किये, जो प्रशंसे
कहे जा सकते हैं, (१) मुहम्मद तुगलक के समय जो प्रजा

ऋण स्वरूप दिया गया था वह सब इसने माफ कर दिया, (२) दण्ड व्यवस्था में कुछ नर्मी का बर्ताव दिखाया था, (३) अनुचित कर हटा दिये। केवल वे ही कर लगाये गये जिनकी इस्लाम धर्म आज्ञा देता था, (४) विद्या के प्रसार के लिये अनेक विद्यालय खोले, (५) निर्धनों और विधवाओं की सहायता के लिये एक स्वतन्त्र विभाग खोला, जिसका नाम 'दिवान-इ-खैरात' था, (६) देहली में योग्य डाक्टरों की देख-रेख में एक धर्मार्थ आतुरालय स्थापित किया, (७) कृषि के सुधार के लिये सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध किया। यमुना और सतलुज से चार बड़ी नहरें निकलवाईं, ताकि सिंचाई कार्य सम्यक् प्रकार से हो सके। इनके अतिरिक्त भी फिरोज तुगलक ने सर्व-साधारण के उपकार के लिये अनेक कार्य किये।

फिरोज और तुगलक वंश का पतन—तुगलक वंश के पतन में फिरोज का बहुत बड़ा हाथ था। क्योंकि उपरोक्त गुणों का महत्त्व निम्नलिखित अवगुणों के सामने नगण्य है, (१) उसमें सेनापतित्व की योग्यता न थी, (२) अपने सैनिकों को मुहम्मद तुगलक की तरह नकद वेतन न देकर इसने जागीरें दीं। फलतः अमीरों और वजीरों को विद्रोह करने का अवसर मिला, (३) राजकीय नौकरियाँ पैत्रिक घोषित कीं, (४) दूसरे धर्मवालों से अच्छा व्यवहार न करना इत्यादि ऐसी घनटायें थीं, जिन्होंने तुगलक वंश को बड़ी तीव्रगति से नष्ट किया। इस प्रकार अपने जीवन के दिन पूरे कर फिरोज तुगलक १३८८ ई० में संसार छोड़ चल दिया।

भारत और तैमूरलङ्ग—फिरोज तुगलक की मृत्यु के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठे, किन्तु अवनति के सिवा उन्होंने कोई विशेष कार्य नहीं किया। भारत के शासन की कुव्यवस्था देख १३९८ में तुर्किस्तान के शासक तैमूरलङ्ग ने भारतपर आक्रमण किया। उसकी एक टांग बचपन में कट गई थी, इसीलिये उसे लङ्ग कहते हैं। तैमूर के आक्रमण के समय तुगलक वंश का

अन्तिम शासक महमूद देहली का बादशाह था, जो बड़ा ही
और अयोग्य था। तैमूर ने मौका पाकर ९२००० सैनिकों
देहली पर आक्रमण किया। यह देख देहली का सुल्तान गुजरा
भाग गया। निःसन्देह दिल्ली में पदार्पण कर तैमूर लंग
किया उसके लिये वह विश्व के कुख्यात सम्राटों में बेजोड़
जाता है। उसने आते ही जनता से धन की अपील की, जिसे
ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। किन्तु उसके कुछ गुन्डे
कारियों से जनता का संघर्ष हुआ, जिसमें दोनों ओर के लोगों
हानि उठानी पड़ी। बस, इतने पर धर्मान्ध तैमूर ने कत्ले आम
आज्ञा दे दी। जो निरन्तर ५ दिन तक चली। इसके बाद राजधानी
अतुल सम्पत्ति के साथ मेरठ, हरिद्वार आदि स्थानों को
खसोटता हुआ अपने देश को लौट गया। तैमूर के आक्रमण
देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवनति
फलस्वरूप एक बड़ा अकाल पड़ा, जिसमें माताओं को पुत्रों
बहिनों को भाइयों से, स्त्रियों को पतियों से दर्दनाक वियोग
पड़ा। तैमूर के लौट जाने का समाचार पाकर भीरु महमूद तु
दिल्ली लौट आया। किन्तु अब दिल्ली की राजधानी ऐसे कुपु
देखना न चाहती थी, अतः उसे १४१२ में ही यमलोक जाना प

सैयद वंश और खिजर खाँ—महमूद तुगलक के बाद
तक देहली की शासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त रही। इसके बाद
१४१४ में तैमूर का प्रतिनिधि खिजर खाँ गद्दी पर बैठा और
सैयद वंश की नींव डाली। इस वंश में कुल चार बादशाह
जिन्होंने ३४ वर्ष तक राज्य किया। सैयद वंश का राज्य दिल्ली
आस-पास ही रहा। खिजर खाँ ने अपना अधिक समय
जमींदारों को दबाने में लगाया। इसके बाद १४२१ में वह
हुआ और मर गया। इसके बाद मुबारक शाह गद्दी पर बैठा,
१४२१ से १४३४ तक राज्य किया और अन्त में अपने सरदा

साथ कत्ल किया गया। मुबारक शाह के बाद सुल्तान मुहम्मद और अलाउद्दीन आलमशाह क्रमशः गद्दी पर बैठे, जो अपनी अयोग्यता के कारण सफल नहीं हुए। सैयद वंश के अन्तिम बादशाह अलाउद्दीन आलम शाह ने १४४५ से १४४८ तक राज्य किया और अन्त में सैयद राजा ने परिस्थिति वश राज्यगद्दी पञ्जाब के अफगान सरदार बहलोल लोदी को सौंप दी।

लोदी वंश और बहलोल लोदी—बहलोल लोदी, लोदी वंश का प्रवर्तक था। उसके राज्यगद्दी पर पदार्पण करते ही राजधानी दिल्ली का गौरव लौटने लगा। सर्व प्रथम उसने अपने आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार जमाया। इसके बाद जौनपुर की शक्तिशाली रियासत को अपने २६ वर्षों के दीर्घ प्रयास से जीत लिया और वहाँ का शासक उसका पुत्र बारबक शाह बना। अन्त में साधारण ज्वर से ही १४८९ में वह मर गया।

सिकन्दर लोदी—सिकन्दर लोदी अपने पिता बहलोल लोदी की तरह एक योग्य और उदार शासक था। इसकी माता एक हिन्दू परिवार की महिला थी। सिकन्दर लोदी एक पराक्रमी बादशाह था। उसने बिहार और तिरहुत आदि अनेक स्थान जीते और आगरा नगर की स्थापना कर उसे राजधानी बनाया। आगरे के पास एक सिकन्दरा नामक गाँव है, जो इसी ने अपने नाम पर बसाया था। निःसन्देह सिकन्दर लोदी एक योग्य शासक था। उसके राज्य में सुख शान्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। खाने-पीने के पदार्थों में कोई मिलावट नहीं करता था। अन्त में ग्वालियर के राजा के साथ युद्ध करने की यह तैयारी कर रहा था कि अचानक बीमार पड़ा और मर गया।

इब्राहीम लोदी—लोदी वंश का अन्तिम बादशाह इब्राहीम लोदी अपने पिता सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा। अपने पिता का कोई गुण इसमें न था। वह बड़ा अत्याचारी,

क्रूर एवं दुरभिमानी था। अफगान सरदारों का छोटी-छोटी पर अपमान करने में वह अपना गौरव समझता था। यही था कि देश में सर्वत्र उसके प्रति लोगों को अनास्था हो गई। के शासक दौलत खाँ लोदी ने तो काबुल के बादशाह बाब भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण भी दिया, जिसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। निमन्त्रण पाते ही महत्त्वाकांक्षी ने एक बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया। १५२६ ई० में पा का मैदान इब्राहीम और बाबर की सेनाओं का युद्ध स्थल थोड़े से संघर्ष के बाद ही इब्राहीम लोदी ने अपनी क्रूरता क पाया और मारा गया। इसके बाद बाबर ने दिल्ली की व्यवस्था अपने हाथ में ली और मुगल साम्राज्य की नींव

मुस्लिम शासन के पतन के कारण—मुस्लिम शासन में १२०६ ई० से १५२६ ई० तक अर्थात् ३२० वर्ष चला। जन्म संस्कार कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों से हुआ और अन्त्येष्टि लोदी के क्रूर कमलों द्वारा। इस साम्राज्य के पतन के मुख्य ये थे—(१) भारत की गर्म जल वायु ने मुस्लिम शास आलसी बना दिया, (२) शक्तिशाली बादशाहों की कमी, साम्राज्य के विस्तार के कारण और उसकी पूरी रक्षा का (४) मुहम्मद तुगलक की नीति, (५) फिरोज का कर्मचारि जागीरें देना, (६) मुगलों का आक्रमण, विशेषतः तैमूर आक्रमण, (७) हिन्दुओं का विद्रोह, (८) बाबर का आक्रम

मुस्लिम शासन का प्रभाव

मुसलमान बादशाहों ने भारत पर पूर्णतया शासन जमा था और हिन्दू जनता भी यह समझने लगी थी कि अपने वि के साथ मिलकर ही रहने में अब लाभ है। किसी भी भौतिक विजय की अपेक्षा सांस्कृतिक विजय चिर स्थायी होती बात को मुस्लिम शासक अच्छी तरह समझते थे। अतः

यहाँ की मुख्य हिन्दू जाति से लेन-देन आरम्भ किया। किन्तु इसमें मुसलमानों की धर्मान्धता बहुत बड़ी बाधक थी। हिन्दुओं के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उत्तर मुसलमान काफिर कहकर देते थे। भोली हिन्दू जनता ने समझा था कि मंगोल, हूण और शक जातियों की तरह यह जाति भी हमारे साथ मिल-जुलकर काम करेगी। किन्तु यह पूर्ण असत्य निकला और इस नवीन विजेता जाति ने हरेक बात में हिन्दुओं का विरोध शुरू किया। हिन्दू जिस गौ को माँ कहकर पूजा करता था उसे यह नवीन जाति मारना ही कुरान की आज्ञा समझने लगी। हिन्दू पूर्व की ओर सन्ध्या-वन्दन करता तो यह पश्चिम की ओर। इसी प्रकार पाठ-पूजा रहन-सहन में यह जाति ने यहाँ अजनबी बनकर रहना ही अच्छा समझा। फल यह हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में वृद्धि हुई। असंख्य हिन्दू धर्म के नाम पर कत्ल किये गये या मुसलमान बना लिये गये। किन्तु इस अशान्ति ने कुछ महापुरुषों को जन्म दिया, जिनके प्रभाव से ये दोनों जातियाँ कुछ निकट में आईं। उन महापुरुषों में रामानुजाचार्य, रामानन्द, कबीर, तुलसी, सूर, गुरुनानक एवं चैतन्य महाप्रभु का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इन विभूतियों के प्रभाव से हिन्दू मुस्लिम कुछ निकट में आये, फल यह हुआ कि लोगों में यह अन्तर आ गये—

(१) कई हिन्दुओं ने जजिया कर से बचने या अन्य किसी कारण वश इस्लाम स्वीकार कर लिया, (२) कई मुस्लिम बादशाहों ने हिन्दू राजकुमारियों से विवाह किये। उन राजकुमारियों ने अपने रीति-रिवाजों का प्रभाव मुस्लिम सभ्यता पर भी डाला, (३) हिन्दू स्त्रियों ने भी पर्दा प्रथा को महत्त्व दिया, (४) हिन्दू लोग हिन्दी और मुसलमान जहां फारसी का प्रयोग करते थे, अब दोनों के मेल-जोल का प्रभाव यह हुआ कि एक तीसरी भाषा उर्दू का जन्म हुआ, (५) मुस्लिम मत का एक यह भी प्रभाव हुआ कि कुछ हिन्दू एकेश्वर

वाद का समर्थन और जातपात का विरोध करने लगे। कबीर ने भी है 'जातपात पूछे नहीं कोई हरि को भजे सो हरि का (६) हिन्दुओं में भक्ति की लहर पैदा हो गई और उसने अपने देवताओं को सर्वश्रेष्ठ समझा।

अभ्यास

[क] मुस्लिम शासन की नींव डालने वाला आप किसे समझते महमूद गजनवी को या मुहम्मद गोरी को; युक्तियुक्त उत्तर दो।

[ख] गुलाम वंश के संस्थापक का सामान्य परिचय देकर अल्त रजिया, नासिरुद्दीन एवं बलवन पर संक्षिप्त नोट लिखो।

[ग] खिलजी वंश के जन्मदाता का परिचय देकर अलाउद्दीन चरित्र चित्रण कीजिये।

[घ] क्या मुहम्मद तुगलक एक पागल बादशाह था ? स्वेच्छा युक्ति संगत समर्थन कीजिये।

[ङ] फिरोज तुगलक और तैमूर लंग के विषय में आप क्या जा हैं ? विस्तारपूर्वक समझाओ।

[च] सैयदवंश और लोदी वंश का सामान्य परिचय देकर मुस्लि शासन के पतन का कारण बताओ।

—o—

एकादश खण्ड

गोरा, बादल एवं पद्मिनी

साहसी बालक बादल—सिंहल के अधिपति हमीरसिंह बादल पौत्र था। इतिहास प्रसिद्ध पद्मिनी इस बालक की फूफी जिसका विवाह रावल वंश के प्रसिद्ध राजा रतनसिंह से हुआ था पद्मिनी अपने सौन्दर्य के लिये बाल्यावस्था में ही प्रसिद्ध हो चु थी। पद्मिनी जैसी सुन्दरी और विदुषी धर्मपत्नी को पाकर रा

नसिंह कृतकृत्य था। जब पद्मिनी अपने पति के यहाँ चित्तौड़ प्रस्थान करने लगी तो बालक बादल ने साथ चलने का हठ या। क्योंकि इसे पद्मिनी ने आज तक सदा अपने साथ रखा । बादल फूफी के साथ चित्तौड़ आया और राणा ने की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध भी कर दिया। थोड़े ही नों में बालक बादल ने अपनी समवयस्कों से खूब मित्रता कर । बादल बचपन में ही 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' उक्ति को चरितार्थ करता था। १०-१२ वर्ष की अवस्था में बादल युद्ध की अनेक चालों से परिचित हो गया। अपने पाठियों के साथ नकली युद्ध का अभ्यास करना और उनमें ा के प्रति उच्च भाव पैदा करना बादल के शैशव कालीन कार्य । राणा रत्नसिंह ने उस होनहार बालक की ओर विशेष ध्यान या और वह थोड़े ही दिनों में युद्धकला में निपुण हो गया। इस लक की रणचातुरी का वर्णन हम आगे अलाउद्दीन खिलजी के थ हुए युद्ध में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

युवक गोरा—बालक बादल के विषय में ऊपर हमने कुछ ध्ययन किया। उसके चाचा का नाम गोरा था। सच पूछा य तो यह निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि बादल को दल बनाने वाला गोरा ही था। सिंहल से चित्तौड़ आकर गोरा सदा लक बादल की शिक्षा आदि का ध्यान रखता था। सेना-सञ्चालन मर्मज्ञ गोरा ने वीर बादल को युद्धकला का भली प्रकार से न कराया था। दिल्ली के मुस्लिम शासकों की साम्राज्यवादी ति का वह सच्चा जानकार था। यही कारण था कि ऐसे योद्धा र राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित को पाकर चित्तौड़ निवासी फूले समाये। गुप्तचरों द्वारा अलाउद्दीन की प्रत्येक हलचल का ज्ञान दल को कराते रहना गोरा की अपनी निजी विशेषता थी। विशेष र्णन अलाउद्दीन के साथ हुए युद्ध में देखिये।

अलाउद्दीन और पद्मिनी अपहरण योजना—ऊपर कहा है कि पद्मिनी ने अपनी सौन्दर्य रश्मियाँ दशो दिशाओं में बि थीं। इसका ज्ञान होते ही अपने जातिगत स्वभाव के कारण उद्दीन पद्मिनी की प्राप्ति के लिये छटपटाने लगा। रानी को प्राप्त के विचार से १३०२ में सुल्तान अपने साथ एक बड़ी सेना चितौड़ की ओर चला। चितौड़ पहुँचकर उसने एक जंगल में डाल दिया। गुप्तचरों द्वारा से यह भी मालूम हुआ कि इस में महारानी नित्य प्रति सायंकाल वायु सेवन करने आती हैं समाचार पाते ही सुल्तान ने पद्मिनी को कपट से छलने की और अपने वीर सैनिकों को भी नियुक्त कर दिया। रानी की में कई दिन सैनिक रहे। अचानक एक दिन उपवन में रानी हो गयी। इधर मौका पाकर, सुल्तान के ५ सैनिकों ने पद्मि अपहरण का प्रयास किया, किन्तु रानी के अङ्ग रक्षकों ने प्र किया। थोड़ी देर बाद वीर बादल वहाँ जा पहुँचा और उ मदान्ध यवन सैनिकों को यमलोक भेज दिया और शेष तीन प्रकार जान बचाकर भाग गये। रानी की सुरक्षा का प्रबन्ध बादल ने अलाउद्दीन के सैनिकों का पीछा किया। अन्त में उद्दीन को पद्मिनी के विषय में बताते हुए उन सैनिकों को वीर ने देख लिया। इसके बाद बड़ी चतुरता से वह यवन शि घुस गया और दो यवन सैनिकों के शिर काटकर चितौड़ लौट आया। इस घटना ने अलाउद्दीन के सैनिकों में स मचा दी। इधर बादल की वीरता से प्रसन्न होकर राणा ने अपना सेनापति नियुक्त किया।

अलाउद्दीन और चितौड़ दुर्ग—अपनी पहली योज असफल होकर सुल्तान ने रात्रि के निःस्तब्ध वातावरण में आक्रमण करने का विचार किया। एक दिन अपनी योजना अलाउद्दीन की सेना ने किले पर चढ़ाई की, किन्तु विजय पाना

रहा, उनके लिये वहाँ पहुंचना ही टेढी खीर थी। जब मुस्लिम सैनिक दुर्ग के पास पहुँचे तो बादल के आदेशानुसार लोगों ने उनका ईंट और पत्थरों से स्वागत किया। अपनी सेना को इस प्रकार कुत्ते की मौत मरते देख अलाउद्दीन ने काले मुँह लौटना ही अच्छा समझा।

अलाउद्दीन का पत्र और पद्मिनी के दर्शन की तैयारी—अपनी सारी योजनाओं में असफल होकर सुल्तान ने एक छल भरा सन्धि पत्र राणा रतनसिंह को भेजा। अलाउद्दीन के दूत ने राणा को पत्र दिया, जिसमें दूर से पद्मिनी के दर्शन की प्रार्थना की गई थी। इस प्रस्ताव का वीर बादल ने डटकर विरोध किया। किन्तु राजा ने अपने सरल और निष्कपट हृदय से उस प्रस्ताव का स्वागत किया। क्योंकि उसका विचार था यदि सुल्तान इस तरह लौट जाय तो युद्ध की बला टल जायगी। अन्त में महारानी पद्मिनी की सम्मति ली गई। पहिले तो उसने साफ इन्कार कर दिया। किन्तु राजा के समझाने पर दर्पण में दर्शन देना उसने स्वीकार कर लिया। अलाउद्दीन को जब यह सूचना मिली तो उसने अपनी कूटनीति की सफलता समझी। इधर पद्मिनी के दर्शन कराने के लिये प्रबन्ध किया गया। राणा रतनसिंह के आदेशानुसार अलाउद्दीन अपने कुछ सैनिकों के साथ चितौड़ दुर्ग पर आया। सुल्तान का आतिथ्य सत्कार राणा ने दिल खोलकर किया। क्योंकि ऐसा करना हिन्दू अपने धर्म समझते हैं। अलाउद्दीन के पहुँचते ही सुल्तान ने दर्पण में पद्मिनी को देखा और उसका हृदय चकनाचूर हो गया। वस्तुतः 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' की उक्ति पद्मिनी पर पूर्णरूप से चरितार्थ होती थी।

राणा का बन्दी होना और मुक्त होना—पद्मिनी के दर्शन के बाद सुल्तान को राणा भारतीय-लोकाचार की दृष्टि से द्वार तक पहुंचाने आये। चलते समय राणा ने कहा मैं समझता हूँ अब आप दिल्ली

सेना सहित लौट जायँगे। इस पर सुल्तान ने पुनः पद्मिनी के विवाह की इच्छा प्रगट की जिस पर राणा आगबबूला हो गे। किन्तु अलाउद्दीन की पूर्व निश्चित योजना से राणा बन्दी लिये गये। यह समाचार दुर्ग में पहुँचते ही बादल ने सैनिक तै-रियाँ आरम्भ कर दीं। थोड़ी देरबाद अलाउद्दीन का सन्देश कि राणा की मुक्ति अब पद्मिनी के मिलन पर होगी। इस समा से राजपूतों के भुजदण्ड क्रोध के मारे कांपने लगे। पद्मिनी पति के बन्धन पर अतीव दुःखी थी। उसने शीघ्र ही अपने वि सरदारों से सलाह की और अलाउद्दीन को उत्तर दिया। आ प्रस्ताव हमें सहर्ष स्वीकार है, किन्तु राजकुमारी अपनी आठ सखियों के साथ तुम्हारे पास आवेंगी। आठ सौ सखियाँ डोलि में होंगी। याद रखिये किसी भी डोली से आपके सैनिक छेड़छा न करें। यह सूचना पाते ही सुल्तान मारे खुशी के फूला न सम था। उसने बड़े कड़े शब्दों में सैनिकों को आज्ञा दी कि यदि तुम ने जरा भी किसी डोली से छेड़खानी की तो इसका परिणाम होगा। बादल की चतुरता से इधर डोलियों में रणबाँकुरे राज अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो यवन सम्राट् के कैम्प की ओर चल डोलियाँ उठाने वाले कहारों के स्थान पर भी राजपूत योद्धा इधर उधर छोटी डोलियाँ थीं और बीच में एक बड़ी डोली थी, जो से ही रानी पद्मिनी की सूचना देती थी। वहाँ पहुँचते ही पद्मि सर्व प्रथम राणा रतनसिंह वाले खेमा पर धावा मारा और के साथ सकुशल दुर्ग आ पहुँची। अलाउद्दीन को अब ज्ञात कि 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' का बर्ताव मेरे साथ किया गया है। इसके बाद दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा।

गोरा-बादल की वीरता—राजपूत और तुर्क सेना में युद्ध होने लगा। गोरा और बादल की रण-चातुरी का वर्णन ले के बाहर की शक्ति है। ये वीर जिस ओर बढ़ते उधर ही त्राहि

शब्दों से यवन सेना गिरती, मरती, और छिपती नजर आती थी। इस रण-कौशल ने अपने को अद्वितीय समझने वाले यवन वीरों के भी छक्के छुड़ा दिये। किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन वीरों को कोई अन्य सहायता न थी, जबकि मुस्लिम सैनिकों का दिल्ली से लेकर चित्तौड़गढ़ तक तांता लगा था। फिर भी अन्त में अपनी पराजय होते देख यवन सेनापतियों ने एक साथ गोरा पर आक्रमण किया। फलस्वरूप अपनी दीर्घ मार-काट के बाद गोरा ने वीरगति प्राप्त की। यह दुःखित समाचार पाते ही दुर्ग में महा शोक छा गया। बादल ने अपनी चाची को अपने वीर चाचा का शव दिया, और वह उनके साथ सती हो गई। किन्तु सती होने से पूर्व उसने सब राजपूतों और राजपूत स्त्रियों को ऐसा ही करने की प्रार्थना की।

अलाउद्दीन की दुराशा और पद्मिनी--सुल्तान की सेना बार-बार हार जाने पर भी अपने नये सैनिकों के साथ आगे बढ़ती थी। किन्तु राजपूतों की सेना सीमित थी, अतः उसने किले में लड़ना ही अब श्रेयस्कर समझा। किले के बन्द वातावरण से ऊब कर शत्रु सैनिकों ने के साथ जूझ जाने का दृढ़ संकल्प किया। इधर पद्मिनी ने अन्य राजपूत स्त्रियों के साथ जौहर व्रत लिया। जौहर व्रत का नियम है कि जब विजय की तनिक भी आशा नहीं रहती तब पुरुष केसरिया वस्त्र धारण कर जीजान से युद्ध करते हैं और वीरांगनाएं हर्ष पूर्वक मातृ-भूमि का यशगान करती हुईं अपने को अग्निदेव के हवाले करती हैं। यही महारानी पद्मिनी के नेतृत्व में लगभग दस हजार वीरांगनाओं ने चित्तौड़ में किया। किन्तु जीतेजी मातृ-भूमि पर आँच न आने दी। शेष राजपूतों ने केसरिया वस्त्र धारण किया और भूखे सिंह की तरह यवन सेना पर टूट पड़े। बादल ने मरते समय भी यवन सेना को बता दिया, कि उसकी धमनियों में भारतीय वीरता का कितना जोश

था। इस प्रकार चित्तौड़ की रक्षा के लिये ३० हजार सैनि बलिदान दिया।

पद्मिनी की प्राप्ति की उद्दाम लालसा से अलाउद्दीन ने कि प्रवेश किया। किन्तु उस कामी और व्यभिचारी बादशाह आशाओं पर तुषारापात ही हुआ। सचमुच वह जीतकर भी गया। अन्त में चित्तौड़ का गवर्नर अपने लड़के खिज्र खाँ को ब सुल्तान बिना पद्मिनी के दिल्ली लौट गया।

अभ्यास

[क] 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' के आधार पर बादल चरित्र चित्रण कीजिये।

[ख] बादल को बनाने में गोरा का क्या सहयोग था ? विस्तार वर्णन करो।

[ग] अलाउद्दीन का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि व कामी बादशाह था।

[घ] पद्मिनी जितनी सुन्दरी थी उससे कहीं अधिक विदुषी और वती थी क्या यह सत्य है ? युक्ति-युक्त उत्तर दो।

[ङ] राणा रतनसिंह का सामान्य परिचय देकर जौहर व्रतपर नोट लि

—०—

द्वादश खण्ड

सन्तकबीर, गुरुनानक, नामदेव, चैतन्यमहा

सन्त कबीर और उनका जीवन वृत्त—कबीरदासजी समय इस धरा पर आये, उस समय मुसलमानों का राज्य भा सर्वत्र फैल चुका था। मुसलमान हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के बाध्य करते थे और उनके मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे।

रण था कि हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य तीव्रगति से बढ़ रहा था। उस समय किसी महान् विभूति की आवश्यकता थी, जो दोनों जातियों को उचित मार्ग दिखाती। सन् १३९८ ई० में शक्ति 'इन दाऊन राह न पाई' कहती हुई बनारस के लहरतारा तालाब पर अवतीर्ण हुई। इस विभूति ने आगे चलकर कवीरदास नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके जन्म के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग एक विधवा ब्राह्मणी के उदर से पैदा हुआ मानते हैं, जिसने लोक लाज के कारण लहरतारा तालाब पर इन्हें फेंक दिया था। दूसरे लोग नीरु का औरस पुत्र भी मानते हैं। इतना सत्य है कि कबीरदासजी का पालन-पोषण नीरु और उसकी स्त्री नीमा के हाथों से हुआ। परिस्थिति वश यह पढ़ लिख न सके। कबीरदासजी स्वयं कहते हैं। 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गहो नहीं हाथ' कबीर अपने पिता नीरु को कपड़ा बुनने में पर्याप्त सहयोग देते थे। उदारता और कोमल हृदय तो उन्हें जन्म सिद्ध प्राप्त था। अनपढ़ होने पर भी, कबीर को सत्संगति करने का बडा शौक था। यही कारण है कि आज उनकी साखियों और पदों में हमें भारतीय दर्शन की झलक मिलती है। उनकी भाषा खिचड़ी है, क्योंकि उसमें पञ्जाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषाओं का मिश्रण है।

कबीरदासजी आचार्य रामानन्दके उदार विचारों से इतने प्रभावित थे कि उनका शिष्य बनने का प्रयत्न करने लगे। रामानन्दजी ने पहले तो शिष्य बनाने के लिये कबीर को मना किया। किन्तु अपने हठ के पक्के कबीर ने रामानन्द जी का साथ नहीं छोड़ा। एक दिन जिस घाट पर रामानन्दजी प्रातः स्नान करने आते थे उसी पर कबीरदासजी लेट गये। रामानन्दजी का पैर कबीर के शरीर पर अचानक पड़ गया और वह राम राम कहते २ पीछे हटे। कबीर के प्रार्थना करने पर रामानन्द ने उन्हें शिष्य मान लिया। कबीरदास का विवाह लोई नामक स्त्री से हुआ जिसके पेट से कमाल और कमाली नामक दो सन्तानें भी हुई। कमाल के बारे में स्वयं कबीर दासजी कहते हैं 'बूड़ा

वंश कबीर का जन्मा पूत कमाल'। कबीर ने जीवन का अधि
समय बनारस में ही व्यतीत किया। किन्तु मरते समय मगहर
गये। लोगों का विचार है कि उस समय की प्रचलित इस भाव
कि 'काशी मरने से मुक्ति मिलती है और मगहर में नर्क' तो
लिये ही वह वहाँ गये। कबीरदासजी स्वयं कहते हैं 'जो कबिरा
मरै, रामहि कवन निहोरा'।

कबीर और उनके विचार—कबीर की वाणी का संग्रह 'बी
नाम से उपलब्ध है, जिसके तीन भाग हैः—रमैनी, सबद, सा
कबीरदास ने हिन्दू और मुसलमानों को समझाया कि तुम दोन
जगत् पिता परमात्मा की सन्तान हो। अतः आपस में लड़ने
आवश्यकता नहीं। अन्ध विश्वास और ढोंग से कबीर को बड़ी
थी। जाति पाति को वे देश का महान् शत्रु समझते थे। निर
ईश्वर की पूजा करने की लोगों को सलाह दी। गुरु पूजा पर
ध्यान दिया। कहा भी है 'गुरु गोबिन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाय,
हारी गुरु अपने जिन गोबिन्द दियो मिलाय'। संक्षेप में यही कह
सकता है कि उस समय के रुग्ण समाज के लिये कबीर एक
वैद्य थे।

गुरु नानक—इस विभूति का जन्म १५ अप्रैल १४६९ ई
शेखपुरा जिला के तलवाड़ी ग्राम में हुआ था। आजकल नन
साहेब के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान आजकल पाकिस्तान में
है। क्षत्रिय वंशीय कालूचन्द इनके पिता का नाम था, जो
समय एक अच्छे पटवारी थे। घर की आर्थिक स्थिति अ
न होने के कारण यह उच्च शिक्षा न ले सके। पिता ने हिन्दी सी
के लिये गोपाल पण्डित के यहाँ भेजा। इसके बाद सन् १४७
पं० ब्रजलाल ने इन्हें संस्कृत का सामान्य परिचय कराया। फ़
का अध्ययन इन्होंने मौलवी कुतुबुद्दीन से किया। इन पुस्तकों के अ
की अपेक्षा इनका मन प्राकृतिक ... की ओर अधिक

ा। बाल्यावस्था में ही गुरु नानक विरक्त से रहते थे। पुत्र की यह शा देखकर पिता ने शीघ्र ही व्यवसाय में लगाना उचित समझा। कदिन कुछ रुपये दिये और सौदा खरीदने के लिये बाजार में भेजा। रु नानक ने वहाँ कुछ भीख माँगने वालों को देखा और उनका दय दया से भर आया। इसके बाद सारा पैसा उनके खाने' पीने ौर वस्त्रों पर लगा कर खाली हाथ गुरु नानक घर लौट आये। पिता पूछने पर कि सौदा कहाँ है ? उन्होंने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया ताजी मैंने उस सौदे को भविष्य के लिये सुरक्षित कर दिया है। पूरा ल समझने पर कालूचन्द को बड़ा क्रोध आया। उसके बाद गुरु नक को व्यापार से हटा कर पिता ने गाय-भैंस चराने के लिये नियुक्त या। गोचारण में भी वह समाधि लगाकर एकान्त में बैठ जाते थे। ल यह होता था कि गाय-भैंसे दूसरे का खेत चर जातीं, जिसके लिये ालूचन्द को रोज दो चार उपालम्भ सुनने पड़ते थे। यह दशा देख- र उनकी बहिन नानकी देवी इन्हें अपने पति के घर ले गईं। वहाँ नका समय भगवद् भजन में व्यतीत होने लगा। कुछ दिनों बाद उनके हनोई जयराम ने दौलत खाँ लोदी के दरबार में गुरु नानक को नौकरी ला दी। कुछ आनाकानी करने के बाद उन्होंने सन् १४८५ में करी करना आरम्भ कर दिया। इस कार्य को उन्होंने १४८७ ई० तक र्थात् १२ वर्ष बड़े उत्साह और नेक नीयत से किया। इसी बीच ाला मूलचन्द की सुपुत्री से इनका विवाह हो गया। श्री चन्द्र और दमीचन्द्र नामक इनके दो पुत्ररत्न हुए। सन् १४९७ ई० में नौकरी ोड़ कर ये हिन्दू, जैन, बौद्ध, मुस्लिम और ईसाई धर्मावलम्बियों के ीर्थों पर गये और वहाँ से अच्छे २ अनुभव प्राप्त किये। यात्रा के ाद इन्होंने अपना स्थायी स्थान कर्तारपुर में बना लिया। १५२२ ई० उनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद सिक्ख धर्म आदि प्रवर्तक गुरुनानक भी २२ सितम्बर १५३९ ई० में परलोक ासी हुए।

गुरु नानक की शिक्षा—सिक्खों के धर्म-ग्रन्थ 'ग्रन्थ-साहब' गुरु नानक की वाणियों का संकलन है। गुरु नानक की शिक्षा सरल और चित्ताकर्षक होती थी। बड़े २ दार्शनिक विचार को हँसते समझा देना उनकी निजी विशेषता थी। हिन्दू-मुस्लिम न्धता की असली बात को उन्होंने समझा और दोनों की रूढ़ियों अन्धविश्वासों के विनाश के लिये जुट गये। सन्त कबीर की भी हिन्दू और मुस्लिम आदि जातियों को एक ही जगत् पिता सन्तान समझते थे। मूर्ति पूजा को वे निरर्थक मानते थे, क्योंकि विचार था जब प्रकृति का कण कण उस ईश्वर की मूर्ति है तो मानव निर्मित मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं। आत्मशुद्धि वे एकमात्र ईश्वर प्राप्ति का साधन समझते थे। उनके विचार से शुद्धि के लिये भक्ति और ज्ञान का होना आवश्यक है। गुरु ने अपने जीवन में 'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः' को पूर्ण रूप से चरितार्थ सचमुच मुस्लिम राज्य में इतनी दृढ़ता और स्पष्ट शब्दों में विचार व्यक्त करना गुरु नानक जैसी विभूति का ही काम था। मानव को आत्म शुद्धि के लिये प्रेरित करते हुए कहते थे।

'सच्च व्रत, सन्तोष तीरथ, ज्ञान धान, स्नान।
दया देवता, छमा जप मालते श्री प्रधान॥

सन्त नामदेव का जीवन वृत्तान्त—इस महान् विभूति जन्मकाल सन् १२७० ई० में माना जाता है। सन्त नामदेव दरजी वंश के थे। उनके पिता का नाम दामाशेट और माता नाम गोणाई था। सचमुच इस दरजी नामदेव ने जो समय में काम किये उसके लिये हिन्दू जनता सदैव उनकी रहेगी। सन्त नामदेव द्वारकाधीश प्रभु विट्ठल के अनन्य थे। वह सदैव खाते-पीते, चलते-फिरते, विट्ठल भगवान् का लेते रहते थे। विट्ठल भगवान के प्रति इस दृढ़ भक्ति

कारण उनके घर का आचार-विचार ही कहा जाता है। बाल्यावस्था में भी बिना भगवान् को भोग लगाये न खाना, भगवान् के नाम पर बाल क्रीडा करना, लिखते समय सर्वप्रथम पाटी पर 'विठ्ठल भगवान की जय' लिखना निःसन्देह उनकी असीम श्रद्धा का द्योतक है।

इस प्रकार की वैराग्यवृत्ति देखकर उनके माता-पिता न इनकी शादी ९ वर्ष की अवस्था में ही कर दी। किन्तु सन्त नामदेव पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। वे सदैव की भाँति साधु मण्डलियों में जाते और खुलकर हरिकीर्त्तन करते थे। गृहस्थ जीवन के साथ-साथ हरिकीर्तन का निरन्तर कार्य करना नामदेव की अपनी विशेषता है। नामदेव के चार पुत्र और पुत्रियाँ थीं। पुत्रों के विवाह के बाद सन्त नामदेव का घर कोलाहल से व्याप्त रहने लगा। इसलिये उन्होंने विसोबा खेचरनाथ को अपना गुरु बना लिया, जो उस समय योग ज्ञान और भक्तियों में सर्वोत्कृष्ट माने जाते थे, इसके बाद वे उन्हीं की सेवा में रहने लगे। धीरे-धीरे उनके प्रचार से वहाँ २४ घन्टे भगवद् भजन और चर्चा होने लगी। इसके बाद गुरु की आज्ञा से उन्होंने भारत भर में भ्रमण किया और भक्ति रस से लोगों को तृप्त कर दिया। अब नामदेव का नाम चारों तरफ फैल गया। प्रचार का अधिकांश समय उन्होंने पञ्जाब में व्यतीत किया। नामदेव के पद पञ्जाबी और हिन्दी में मिलते हैं, जिन पर उनकी मातृभाषा मराठी का प्रभाव स्पष्ट ज्ञात होता है। सन् १३५० ई० में इस विभूति ने ८० वर्षीय जर्जर शरीर को छोड़कर भगवान् विट्ठलदेव को मिलने चल पड़े।

सन्त का उपदेश और व्यक्तित्व—सन्त नामदेव की शिक्षा और उपदेश प्रायः वे ही थे जिनका पूर्व वर्णित विभूतियों ने प्रचार किया था। नामदेव ऊँच-नीच, सवर्ण असवर्ण आदि जाति-पाति के भेदभाव को मानवता का कलंक समझते थे। उनके विचार से

भगवान् ने सबको अपना पुत्र समझकर इस पृथिवी पर विचरण करने के लिये भेजा है। अतः उस भगवान के पुत्रों में भेदभाव डालना मानव का कार्य नहीं। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये इन्होंने जीवन भर कार्य किया, जिसमें उनको कल्पनातीत सफलता भी मिली।

चैतन्य महाप्रभु—चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८ बंगाल के नदिया नामक नगर के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण के हुआ था। यह बचपन में बड़े नटखट समझे जाते थे। इन्हें कूद सबसे प्रिय था। इनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध न हो सका क्योंकि इनके बड़े भाई विश्वरूप ने सन्यास ले लिया और इन्हें पिता के साथ घर का कार्य देखने लगे। जब ये अभी ११ वर्ष के थे तो इनके पिता इनका साथ छोड़ सदा के लिये चल बसे। इसके इन्होंने व्याकरण अलंकार एवं न्याय आदि शास्त्रों का अच्छा प्राप्त किया। १६ वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह वल्लभा की पुत्री लक्ष्मी देवी से सम्पन्न हुआ। थोड़े ही दिनों में प धर्मपत्नी के स्वर्ग सिधारने पर इनका दूसरा विवाह विष्णुप्रिया ना लड़की से हुआ। एक बार पिता का जब यह श्राद्ध करने गया पहुँ वहाँ ईश्वरपुरीजी से इनकी भेंट हुई और उनकी प्रेरणा से ये सब छोड़कर हरिभजन में लग गये। इसके बाद केशवभारती इन्होंने सन्यास की दीक्षा ले ली और इनके जीवन का लक्ष्य हरि बोल, बोल हरि बोल' ही कहना हो गया। सन्यास समय चैतन्य महाप्रभु की आयु २५ वर्ष की थी। वे श्रीकृष्ण अनन्य भक्त बन गये और उन्हीं के प्रेम में मग्न होकर प्र करने लगे। बंगाल में वैष्णव मत का प्रचार इन्होंने खूब कि उनके भक्त आजकल भी बंगाल और पञ्जाब में विशेषरू दृष्टिगोचर होते हैं। ये भक्त अपने को कृष्ण की गोपियाँ कहते ये लोग राग रंग द्वारा भगवान कृष्ण की भक्ति करते हैं। महाप्रभु के शिष्य हिन्दू मुसलमान आदि सब हो सकते थे।

विजाति के बखेड़े को वह ढोंग समझते थे। चैतन्यप्रभु ने मुस्लिम शासकों द्वारा आक्रान्त और पथभ्रष्ट की जातियों को अपनाया और उन्हें अपनी शिक्षा से कृष्णभक्त बना दिया। अपने कार्य में पर्याप्त सफलता के बाद सन् १५३३ ई० में इस महान् विभूति ने अपने असंख्य शिष्यों के क्रन्दन की तनिक भी परवा किये बिना ४५ वर्ष की आयु में ही स्वर्गारोहण किया।

चैतन्यप्रभु की शिक्षा—चैतन्य ने मानव मात्र के जीवन का उदय ईश्वर गुणगान बताया। कई मुसलमान जो पहले हिन्दू थे उन्हें शुद्ध किया। वे सदा कहा करते थे कि जो पतितपावन भगवान कृष्ण की शरण में आ गया उसे पतित कहना पतित का ही काम है। उन्होंने 'अहिंसा परमो धर्मः' का प्रचार किया। सत्य बोलना धर्म का आचरण और निरन्तर ईश्वर सम्बन्धी अध्ययन करना सबके लिये आवश्यक समझते थे, उन्होंने मनु के इस श्लोक का पालन किया—

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यभक्तोधादशकं धर्मलक्षणम्॥'

अभ्यास

[क] कबीरदास के जीवन चरित का वर्णन करते हुए स्वेच्छापूर्वक उनके सिद्धान्तों पर युक्तियुक्त प्रकाश डालिये।

[ख] गुरुनानक के जीवन से हमें क्या शिक्षा मिलती है, स्पष्ट उत्तर दो।

[ग] 'सन्तनामदेव की भगवान विट्ठल के प्रति अगाध श्रद्धा थी' इसको सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

[घ] चैतन्य महाप्रभु वैष्णव धर्म के प्रबल समर्थक और समाज सुधारक थे, क्या यह सत्य है?

—०—

त्रयोदश खण्ड

राणा सांगा, अकबर एवं राणा प्रताप

राणा सांगा—राणा संग्राम सिंह जो इतिहास में राणा स... के नाम से प्रसिद्ध है। वह चित्तौड़ का एक साहसी, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ राजपूत था। राणा रायमल की मृत्यु के बाद सन् १५... ई० में राणा सांगा २७ वर्ष की आयु में मेवाड़ की राज्य गद्दी... बैठा। इस समय दिल्ली का शासन कार्य सिकन्दर लोदी के... में था। राणा मेवाड़ की उन्नति और मुस्लिम शासन की अवनति के बारे में सदैव नयी-नयी योजनाएँ बनाता था। क्योंकि वह भली प्रकार जानता था कि उसका राज्य तीन ओर से शत्रुओं... घिरा हुआ है। इसलिये उसने अपने शत्रुओं से छुटकारा पाने... विचार से एक राजनैतिक संगठन तैयार किया। उस संगठन... शक्ति का ही फल हुआ कि राणा सांगा ने मालवा और गुज... के शासकों को पराजित कर दिया। इन युद्धों में विजय सांगा... अवश्य हुई, किन्तु एक हाथ, एक टाँग और एक आँख गवां... उसके शरीर पर तलवारों और भालों के ८० चिन्ह थे। सांगा... बाबर को दिल्ली तक बढ़ने दिया, किन्तु उसकी यह इच्छा क... न थी कि बाबर यहाँ का सम्राट बन बैठे। यही कारण था कि राणा सांगा ने बाबर के साथ युद्ध की ठानी।

बाबर का आक्रमण और राणा सांगा—बाबर का पिता... उमर शेष था, किन्तु इसकी मां चंगेज खाँ के वंश की थी। ... प्रकार दो वीर वंशों का रक्त बाबर में था। यही कारण था... बाबर अपने बाल्य काल में ही बड़ा वीर और साहसी निक...

पने पिता की मृत्यु के बाद ११ वर्ष में ही तुर्किस्तान की फरगाना यासत का स्वामी बना। किन्तु सम्बन्धियों के षड्यन्त्रों ने बाबर वहाँ से भागने के लिये बाध्य कर दिया। अपना पैतृक राज्य ाने के बाद बाबर कई दिन तक इधर-उधर घूमता रहा। अन्त में ाबुल पर विजय पाकर वहीं राज्य करने लगा। पैतृक राज्य की ाप्ति का स्वप्न छोड़ उसने भारत को जीतने की इच्छा की। इधर दिल्ली के सुलतान इब्राहीम से सब लोग चिढ़ गये थे, विशेष कर दौलत खाँ जो उस समय पंजाब का गवर्नर था। इब्राहीम से बदला लेने के विचार से उसने बाबर को भारत में आने का निमन्त्रण दिया। समाचार पाते ही बाबर एक बड़ी सेना के साथ शीघ्र ही भारत पर चढ़ आया। पञ्जाब के सूबेदार ने उसे आगे बढ़ने दिया। अन्त में इब्राहीम लोदी की सेना और बाबर की सेना का पानीपत के मैदान में सन १५२६ ई० में घमासान युद्ध हुआ। बाबर की धुएँदार तोपों के सामने इब्राहीम की सेना टिक न सकी। फल यह हुआ कि इब्राहीम की सेना बुरी तरह पराजित हुई और इब्राहीम मार दिया गया। इसके बाद दिल्ली राजधानी पर मुगली झण्डा फहराने लगा। इसके बाद शेष राज्यों को जीतकर बाबर निश्चिन्त हो गया।

बाबर की यह निश्चिन्त प्रवृत्ति देख राणा सांगा घबरा उठा। क्योंकि उसका अनुमान था कि तैमूर लंग की तरह बाबर भी कुछ दिन लूट खसोट कर वापस चला जायगा। किन्तु राणा अपना विचार असत्य होते देखकर बाबर से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। अन्त में एक बड़ी सेना के साथ राणा सांगा सन् १५२७ ई०में खनवाहा के मैदान में बाबर के साथ युद्ध करने के लिये उतर पड़ा। दोनों ओर से योद्धा आगे बढ़-बढ़ कर प्रहार कर रहे थे। सायं काल होते-होते मुगलों की सेना के छक्के छूट गये और राजपूतों की चमचमाती तलवारों के सामने अब उनका टिकना कठिन ही नहीं, असम्भव हो गया। इस प्रकार अपनी सेना को भागते देख

बाबर ने ललकार कर कहा। ओ मेरे प्यारे साथियो ! तुम जानते हम कौन हैं ? और कहाँ खड़े हैं ? तुमने इतना कष्ट सहन कर प्राणों की बाजी लगाकर इस देश को जीता है, जिसकी कामना बादशाह करते हैं। ऐ वीर पुरुषों ! तुम्हारे हृदय क्यों घट रहे यह देश हमारा नहीं, अतः हृदय को सुदृढ़ कर आगे बढ़ो। इसलिये अगर आप लोगों ने पीठ दिखाई तो न ठहरने को भूमि है और न आकाश में ही आसरा मिलेगा। अन्त में तो मरना ही फिर मरने से क्यों घबराते हो? तलवार मारकर मरना कुत्ते की मौत मरने से कहीं श्रेयस्कर है। लो कुरान तुम्हारे सामने है इच्छा है करो। मदिरा के प्याले तोड़ दो और आज से क़सम खाओ कि कभी मदिरा पान नहीं करेंगे। बस, इस सार गर्भित भाषण ने मरे मुर्दे उन मुगलों में प्राण फूँक दिये और वे इतने जोश से के राजपूतों की विजय पराजय में बदल गई और राणा दीर्घ कालीन समर चातुरी के साथ युद्ध से भाग निकला।

राणा सांगा के अन्तिम दिन—कण्वाँहा की लड़ाई में जाने पर राणा सांगा ने प्रतिज्ञा की कि बिना बाबर को परा किये चित्तौड़ वापस न जाऊँगा। किन्तु राणा सांगा के मन्त्री मु के साथ अब युद्ध नहीं चाहते थे। अतः १५२९ में सांगा कर्मचारियों ने धोखे से उसे विष दिया और वह मर गया।

अकबर महान और उसके पूर्ववर्ती—बाबर की मृत्यु के सन् १५३० ई० में हुमायूँ दिल्ली की राज्य गद्दी पर बैठा। राज्य प्राप्त करते समय हुमायूँ केवल २३ वर्ष का था। जीवन भर हुमायूँ शत्रुओं से संघर्ष करता रहा। क्योंकि उसके भाई कामरान हिन्दाल और अस्करी ने भी उससे शत्रुता का व्यवहार किया बहादुरशाह से उसने लड़ाई की और विजय प्राप्त की। शेरशाह सूरी के साथ चौसा के मैदान में लड़ाई हुई, जिसमें हुमायूँ पूर्ण से हार गया। इसके बाद दिल्ली का राज्य शेरशाह सूरी के

ा और हुमायूँ भारत छोड़ ईरान भाग गया। १५ वर्ष के देश
काले के बाद हुमायूँ शेरशाह सूरी की मृत्यु पर भारत आया
र पुनः दिल्ली का बादशाह बन गया। हुमायूँ ने अपने पुत्र
कबर को पञ्जाब का सूबेदार नियुक्त किया और बैरमखाँ को उसकी
भाल करने के लिये उसके साथ रखा। किन्तु अब हुमायूँ का
र शरीर दिल्ली का सिंहासन बहुत दिनों तक न सम्भाल सका।
री वंश को हराने के बाद वह केवल छः मास जीवित रहा।
के बाद एक दिन अचानक उसका सीढ़ी से पैर फिसला और वह
गया। कुछ दिनों तक हुमायूँ का मृत्यु समाचार पूर्णरूप
गुप्त रखा गया और बाद में १३ वर्षीय इतिहास प्रसिद्ध अकबर
ान १५५६ ई० में दिल्ली की गद्दी पर बैठाया गया।

अकबर और आरम्भिक कठिनाइयाँ—शेरशाह सूरी से हारकर
ायूँ जब ईरान पहुँचा तो उसने एक ईरानी स्त्री हमीदा बानू
म से विवाह किया। अकबर का जन्म इसी की कोख से १५४२
में अमरकोट के स्थान पर हुआ। ऊपर कहा गया है कि हुमायूँ
गिरकर अचानक मृत्यु हो गई। यह समाचार पाते ही अकबर
उस समय पंजाब में सूबेदार था, शीघ्र ही दिल्ली की राज्य गद्दी
लिये प्रयत्न करने लगा। १३ वर्षीय अकबर के शत्रुओं ने समय
लाभ उठाने का प्रयास किया। पञ्जाब में सिकन्दर सूरी का
र था, पूर्व में आदिलशाह सूरी राज्यसिंहासन पर अधिकार करने
यत्न कर रहा था। काबुल में अकबर का सौतेला भाई मिर्जा
हकीम एक स्वतन्त्र शासक बनना चाहता था। परन्तु अकबर का
सबसे बड़ा शत्रु हेमू था, जिसने हुमायूँ की मृत्यु के बाद ही आगरा
और दिल्ली पर अधिकार जमा लिया और विक्रमादित्य के
नाम से शासन करने लगा। इसलिये अकबर के लिये यह आवश्यक
था कि सबसे पहले वह हेमू का मुकाबला करे। हेमू की सेना की
शालता का ध्यान करते हुए अकबर के लोगों ने काबुल लौटने

की सलाह दी। किन्तु योग्य मन्त्री बैरमखाँ के धैर्य देने
अकबर अपनी सेना के साथ पानीपत के मैदान में डट गया।
हेमू भी एक प्रबल सेना लेकर, जिसमें १५०० सौ केवल हाथी
लेकर आ गया। प्रारम्भ में हेमू की सेना ने अपने शत्रु
परास्त सा कर दिया, किन्तु अचानक एक तीर हेमू की आँख
लगा। तीर लगते ही हेमू मूर्छित होकर गिर पड़ा। अपने
की यह स्थिति देख सेना का साहस छूट गया और भागने
इसके बाद हेमू पकड़ा गया और उसका वध कर दिया गया। इस
से अकबर ने आगरे और दिल्ली का राज्यसिंहासन प्राप्त किया।
प्रकार पुनः भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई।

अकबर और बैरमखाँ—अकबर को दिल्ली और आगरे
शासक बनाने का श्रेय जिस व्यक्ति को दिया जाता है उसका
बैरमखाँ था। सचमुच बैरमखाँ अकबर का शिक्षक एवं सं
था। वह एक तुर्क जाति का सदस्य था। उसने बाबर और हु
की तन-मन-धन से सेवायें की थीं। हुमायूँ को कष्टों में दे
भी वह स्वामी को कभी नहीं छोड़ना चाहता था। यही कार
कि वह हुमायूँ के साथ ईरान भी गया। इधर हुमायूँ की मृ
बाद भी अकबर को शासक बनाकर बैरमखाँ उसका संरक्षक
कार्य करने लगा। उसने पञ्जाब, अजमेर, ग्वालियर और जौ
प्रदेश जीतकर वहाँ के सरदारों को अकबर के अधीन कर दि
परन्तु अपनी वृद्धावस्था में वह अब बड़ा अभिमानी हो गया
जिससे अकबर के वंशज अब बैरमखाँ से घृणा करने लगे
अकबर ने स्वयं भी कई कार्यों में उसे अनधिकार चेष्टा करते दे
इसलिये अकबर ने क्रोधित होकर १५६० ई० में शासन प्रबन्ध
हाथ में ले लिया और बैरमखाँ को मक्के जाने की आज्ञा
किन्तु अपना यह अपमान देखकर बैरमखाँ ने विद्रोह कि
फलस्वरूप जालन्धर के निकट पकड़ा गया। अकबर ने

देनी सेवाओं के बदले उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद वह मक्के यात्रा के लिये चल पड़ा। किन्तु मक्के पहुंचने से पूर्व ही किसी पठान शत्रु ने गुजरात के पाटन स्थान पर उसकी हत्या दी। इस प्रकार अकबर को दिल्ली की गद्दी दिलाने वाले मखाँ की जीवन कहानी समाप्त हो गई।

अकबर और विजय—राज्याभिषेक के बाद अकबर महान यह लालसा थी कि उसकी आज्ञा का पालन पूरे भारत में हो। : उसने राज्य की सीमा बढ़ाने का प्रयास किया, जिसमें उसे शत-शत सफलता मिली। इस सफलता के लिये अकबर को निम्न-खित कार्य करने पड़े :—

(१) सर्व प्रथम दिल्ली, आगरा और पंजाब को १५२६ में पूर्ण से अपने अधीन किया और अपने लुके छिपे शत्रुओं को भी वश कर लिया। (२) अकबर के शासन काल में पहले चार वर्ष मखाँ की विजय के वर्ष थे, जिसमें उसने ग्वालियर, अजमेर और पुर जीत कर अकबर के साम्राज्य की नींव डाली, (३) मालवा अफगान सरदार को पराजित करने के लिये अकबर ने अपने पति अहमद को १५६२ में एक बड़ी सेना के साथ भेजा। फल हुआ कि थोड़े संघर्ष के बाद वहाँ के शासक बहादुरशाह ने नता स्वीकार कर ली, (४) गोंडवाना स्थान मध्य प्रदेश में था, सकी शासक वीर राजपूत रानी दुर्गावती थी। वह रानी अत्यन्त सी बुद्धिमती और राजनीति के मर्म को जानने वाली थी। उसके य को जीतने के लिये मुगलों की सेना ने १५६४ में प्रस्थान किया। सूचना पाते ही दुर्गावती अपनी सेना के साथ जबलपुर के समीप धैर्य के साथ लड़ी। किन्तु अपनी विजय की कोई आशा न देख-उसने शत्रु के हाथों मरने की अपेक्षा अपने हाथों ही मरना छा समझा। अतः उसने आत्म सम्मान की रक्षा के लिये आत्म-ा कर ली। इसके बाद गोंडवाना मुगलों के अधीन हो गया, (५)

चित्तौड़ राजपूताने के प्रसिद्ध मेवाड़ की राजधानी थी। वहाँ का
उदयसिंह बड़ा स्वाभिमानी था। यही कारण था कि जयपुर के
बिहारीमल आदि राजपूतों के अधीनता स्वीकार कर लेने
उसने अकबर के सामने सिर नहीं झुकाया। उदयसिंह की
ने अकबर को स्वयं चित्तौड़ पर आक्रमण करने को बाध्य
अकबर को एक बड़ी सेना के साथ आते देख उदयसिंह ने
राज्य अपने सेनापति जैमल को सौंप दिया और स्वयं अरावली
की ओर भाग गया। वहाँ जाकर उदयसिंह ने उदयपुर स्थान पर
राजधानी बनाई। इधर अकबर का एक मास तक निरन्तर
जैमल ने डटकर सामना किया, किन्तु अचानक गोली लगने पर
ई० में वह मर गया। इस प्रकार चित्तौड़ पर भी मुगलों का
फहराने लगा। (६) रणथम्मौर और कालिंजर भी १५६९ में
जीत लिये। यह देखकर राजपूताना के शेष राज्य बीकानेर,
जैसलमेर के राजाओं ने स्वयं अधीनता स्वीकार कर ली, (७)
को जीतने की इच्छा अकबर के हृदय में बहुत दिनों से थी।
अकबर ने १५७२ ई० में वहाँ आक्रमण किया और वहाँ के
मुजफ्फरशाह ने अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु एक वर्ष
वहाँ एक विद्रोह हुआ, जिसे शान्त करने के लिये सम्राट को
आना पड़ा। उस समय अकबर अपनी नवीन राजधानी सीकरी
रहता था। विद्रोह का समाचार पाकर अकबर ६०० मील की
यात्रा कर गुजरात पहुँचा और विद्रोह शान्त करने में पूर्ण
हुआ। कहा जाता है कि इसी विजय के उपलक्ष्य में उसने
का नाम फतेहपुर सीकरी रखा था, (८) १५७६ ई० में अकबर
बंगाल के शासक दाउदखां के विरुद्ध जाना पड़ा, क्योंकि उसने
साम्राज्य के अधीन रहना अस्वीकार कर दिया था। थोड़ा ही
करने के बाद दाऊद खां हार कर उड़ीसा के जंगलों में भाग गया
१५७६ ई० में मारा गया, (९) काश्मीर काबुल सिन्ध आदि स्थानों
विजय प्राप्त कर अकबर ने सारे उत्तरी भारत पर मुगलवंश की

राई, (१०) उत्तरी भारत पर धाक जमाने के बाद अकबर दक्षिण भारत की विजय की सूझी और उसने शीघ्र ही १५९५ ई० अपने बेटे मुराद को अहमदनगर के विरुद्ध भेजा। उस समय का शासन प्रबन्ध वीर सम्राज्ञी चांद बीबी के हाथ था। उसने द का डटकर सामना किया और मुगलों की एक न चलने दी। में बेचारे मुराद ने सन्धि कर ली। किन्तु १५९९ ई० में चांद अपने ही षड़यन्त्रकारी सैनिकों के हाथ मारी गयी। इसके वहाँ मुगली आज्ञा चलने लगी। इसी प्रकार की और छोटी विजय के बाद अकबर का राज्य बंगाल से अफगानिस्तान और मीर से दक्षिण में गोदावरी नदी तक फैल गया।

अकबर और राजपूत—अकबर बड़ा दूरदर्शी और राजनीतिज्ञ शाह था। जब वह गद्दी पर बैठा तो उसने अच्छी तरह समझ या था कि भारत में चिरस्थायी रहने के लिये यहाँ की हिन्दू जाति के थ अवश्य मिल जुल कर रहना पड़ेगा, विशेषतया यहाँ की वीर ति राजपूत से। अपनी योजना सफल करने के विचार से उसने न लिखित कार्य किये—

(क) विवाह सम्बन्ध—अकबर ने अपने प्रेमपाश में फँसा कई राजपूतों को इतना प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने अपने जाति अभिमान को छोड़कर अकबर के साथ अपनी बहु बेटियाँ भी ह दी। जयपुर के राजा बिहारीमल की लड़की का विवाह कबर के साथ हुआ, जिसके गर्भ से अकबर के पुत्र सलीम का जन्म ा। इसके बाद बीकानेर और जैसलमेर की राजपूत लड़कियाँ भी ही अन्तः पुर में आईं। राजकुमार सलीम की शादी भी राजपूत ावानदास की पुत्री मानबाई से हुआ। इसी राजकुमारी का भाई नसिंह था जो अकबर का मुख्य सेनापति था।

(ख) उच्चपद—राजपूतों को प्रसन्न करने के लिये अकबर ने जपूतों के लिये सब राज्य पदों का दरवाजा खोल दिया। टोडरमल,

राजा भगवानदास, बीरबल और मानसिंह का नाम जिनमें विशेष रूप से लिया जाता है। अकबर की सेना में भी बहुमत राजपूत हिन्दुओं का था।

(ग) धार्मिक स्वतन्त्रता—अकबर समझता था जब तक हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता न मिलेगी ये प्रसन्न नहीं हो सकते अतः उसने मन्दिरों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया और गोवध बन्द करा दिया।

(घ) जजिया हटाना—अकबर ने धीरे धीरे सब कर जो हिन्दुओं पर विशेष रूप से लगाये जाते थे—हटा दिये और अन्त में १५६४ ई० में जजिया कर लेना भी बन्द कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि इन करों के हटाने पर सरकारी आय को बहुत बड़ा धक्का लगा। किन्तु हिन्दू समाज अकबर पर लट्टू हो गया। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि राजपूतों ने मुगलों के शासन को चिरस्थायी बनाने का पूरा प्रयत्न किया। यही कारण था कि अकबर का शासन काल सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। परन्तु जब औरंगजेब आया तो उसने अकबर की नीति का विरोध किया। फल यह हुआ कि मुगल साम्राज्य औरंगजेब के साथ २ रसातल में चला गया।

अकबर और राज्य प्रबन्ध—अकबर की महानता का श्रेय उसके राज्य प्रबन्ध को ही दिया जाता है। क्योंकि उसने अपने राज्य काल में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक उन्नति सर्वतोमुखी की थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक स्वतन्त्र शासक था। वह जो चाहता कर सकता था। वह न केवल शासक था, अपितु नियम बनाना, बिगाड़ना और निर्णय देना भी उसके अधिकार में था। किन्तु अकबर ने कभी इनका दुरुपयोग नहीं किया। वह सदा अपने मन्त्रियों से सलाह करके ही किसी कार्य को करता था। राज्य प्रबन्ध के लिये अकबर ने अपने राज्य को १५ विभागों में बाँटा। प्रत्येक प्रान्त एक गवर्नर (सूबेदार) के हाथ था। इसके

अतिरिक्त सूबेदार की सहायता के लिये एक सेनाध्यक्ष और कई अन्य सहयोगी नियुक्त किये जाते थे। प्रान्त जिलों और परगनों में विभाजित था। परगने गावों में, जिनके प्रवन्ध के लिये ग्राम-पंचायतें थीं। शहरों की देखभाल के लिये कोतवाल और वहाँ के अभियोगों के निर्णय के लिये काजी नियुक्त थे।

सेना के नियन्त्रण के लिये उसको ३३ विभागों में बाँटा गया था। सेना के प्रत्येक विभाग के अधिकारी को कई घुड़सवार रखने पड़ते थे। छोटे से छोटा पदाधिकारी १० और बड़े से बड़ा १००० घुड़सवार रख सकता था, जो समय पड़ने पर बादशाह को दिखाने पड़ते थे। किन्तु इस रीति से बहुत बड़ी हानि यह होती थी कि सेनाध्यक्ष पूरे घुड़सवार न रखते और समय पड़ने पर एक दूसरे से लेकर गिना देते थे। इस त्रुटि को दूर करने के लिये अकबर ने शेरशाह सूरी का अनुसरण किया और घोड़ों को अङ्कित कर रजिस्टर में लिखना आरम्भ किया। इससे वेचारे सेनाध्यक्षों की वह आमदनी जाती रही, जो घुड़सवारों को न रखकर होती थी। सेना को नकद वेतन मिलता था। शाही सेना में घुड़सवारों को महत्त्व अवश्य दिया जाता था, किन्तु पैदल, तोपखाना, हाथी आदि के बल से लड़ने वाली सेना का भी उचित प्रवन्ध था। भूमि प्रवन्ध के लिये अकबर का शासन काल बड़ा प्रसिद्ध है। यह श्रेय उसके अर्थ-मन्त्री टोडरमल की योग्यता से मिला था। सर्वप्रथम टोडरमल ने राज्य की खेती योग्य भूमि को नापा और उसे चार विभागों में विभाजित कर दिया। समस्त उपज का तिहाई भाग भूमिकर नियत किया, जिसे नकद या उपज के रूप में दिया जाता था। अकाल के दिनों में भूमिकर कम कर दिया जाता था और आवश्यकता पड़ने पर कृषकों को ऋण भी दिया जाता था। कृषकों से कठोरता से कर लेनेवाले अधिकारी दण्डित किये जाते थे। फल यह हुआ कि कृषकों की दशा अच्छी बनी रही। टोडरमलका यह कृषि-प्रबन्ध

शेरशाह सूरी का अनुकरण था, जो बाद में अंग्रेज शासकों के लिये भी आधार-शिला बना।

अकबर और मुगलवंश—यह सत्य है कि मुगलवंश की भारत में नींव डालने वाला बाबर था, किन्तु अधिक यश प्राप्त करने वाला अकबर ही था। अतः अकबर मुगल साम्राज्य का सबसे प्रसिद्ध और बड़ा सम्राट् माना जाता है, बाबर नहीं। अकबर को बड़ा मानने में निम्नलिखित कारण हैं:—(१) अकबर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से राज्य का अत्युत्तम प्रबन्ध किया, जिससे मुगल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हो गयी। इसके लिये उसके राष्ट्रीय आर्थिक और सेना सम्बन्धी सुधार ही प्रमाण है। (२) अकबर ही पहला मुस्लिम शासक था, जिसने यह अनुभव किया कि प्रजा राजा की सन्तान है। अतः उसमें भेदबुद्धि रखना अन्याय ही नहीं, घोर अन्याय है। हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई का उस समय सम्बन्ध जोड़ना सचमुच अकबर का प्रशंसनीय कार्य था। क्योंकि उस समय पूरे योरोप में धर्म के नाम पर अनेक जातियाँ आपस में मारपीट कर रही थीं। धार्मिक स्वतन्त्रता देना ही उसकी राज्य सत्ता को चिरकालीन बनाने में मुख्य सहायक थी। (३) अकबर ने सब जातियों को समान समझा और उस समय 'दीन-इ-इलाही' मत चलाया जिसके निर्माण में सब जातियों का समान हाथ था। इस मत के संचालन के कारण थे—(१) अकबर स्वभाव से ही स्वतन्त्र विचारों का था। यह स्वतन्त्र विचार उसे अपने गुरु अब्दुल लतीफ से मिले थे। अब्दुल लतीफ भेदभाव से बहुत दूर था, जिसका प्रभाव अकबर पर पड़ा। यही कारण था कि वह कट्टर मुसलमान न बन पाया। (२) हिन्दू धर्मपत्नियों ने अकबर के विचारों पर प्रभाव डाला और वह हिन्दू धर्म की ओर झुक गया, (३) अकबर के दरबार में सूफी विद्वान् फैजी और अब्बुल फजल थे, जिनके कारण अकबर के मन में समता के भावों को दृढ़ता मिली, (४) अकबर को धर्म सम्बन्धी चर्चा सुनने का बड़ा चाव था। यही कारण था कि वह सब धर्म

वालों को बोलने का अवसर देता था। इसके लिये उसने राजकीय धन से इबादतखाना 'पूजा गृह' बनवाया। येही कारण थे कि उसे सर्वधर्म सम्मेलन के लिये दीन-इ-इलाही मत चलाना पड़ा। इस मत में सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों का पालन किया जाता था। अकबर के दरबार में नवरत्न थे, जो सदा उसके राज्य प्रबन्ध में सहयोग देते थे, जिनमें अब्दुल फजल, फैजी, राजा टोडरमल, वीरबल और अब्दुल रहीम खानखाना विशेष प्रसिद्ध थे।

राणा प्रताप—राणा सांगा के पौत्र और उदयसिंह के सुपुत्र राणा प्रताप ने अपने पिता की मृत्यु के बाद १५७२ ई० में उदयपुर का शासन अपने हाथ में लिया। प्रताप बड़ा साहसी पराक्रमी और कर्मठ व्यक्ति था। यही कारण है कि राजस्थान के इतिहास में उनका सर्वोत्कृष्ट स्थान है। बाल्यावस्था में ही राणा कुम्भ और राणा सांगा के वृत्तान्तों ने राणा प्रताप की नसों में वीरता के भाव कूट-कूटकर भर दिये थे। यही कारण था कि राज्यगद्दी पर बैठते ही प्रताप ने मुगलों को देश से निकालने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। चित्तौड़ मुगलों के अधीन है, यह स्मरण करते ही उसके हाथ मारे क्रोध के मूछों पर आ जाते थे। वह सदा कहा करता था, 'यदि बीच में मेरे पिता उदयसिंह चितौड़ के राणा न बनाये गये होते, तो इन मुगलों की क्या शक्ति थी कि वे आज चितौड़ पर शासन करते'। राणा प्रताप की प्रबल इच्छा थी कि मुगलों को एक दिन भी भारत में न रहने दिया जाय। किन्तु प्रताप भी क्या करता, जब कि उसे बाहरी शत्रु मुगलों से भी टक्कर लेनी थी और उन अपने भाई घरेलू शत्रु राजपूतों से भी, जिन्होंने अपनी मान-मर्यादा की तनिक भी परवाह किये बिना मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इनका सामना करने के लिये प्रताप के पास न तो सुदृढ़ सैन्य बल था और न धन-सम्पत्ति। इतना होने पर भी वे आज तक मुगलों से कभी घबराये नहीं। यदि

वे कभी घबराते थे तो उन जयचन्दों से, जिन्होंने अपनी बहू-बेटियाँ सहर्ष मुगलों के साथ ब्याह दी थीं। राणा प्रताप को उस समय तो विशेष चिन्ता हुई जब उनका छोटा भाई शक्तिसिंह साधारण सी बात से क्रोधित होकर मुगलों से जा मिला और उन्हें प्रताप की आन्तरिक स्थिति अवगत कराया।

यह सब होते हुए भी प्रताप ने कुम्भगढ़ में मन्दिर के सामने खड़े होकर अपने सिसोदिया शूर वीरों के साथ मिलकर प्रतिज्ञा की कि 'हम लोग जब तक चितौड़ गढ़ प्राप्त न कर लेंगे तब तक भूमि पर सोयेंगे, पत्तों पर भोजन करेंगे, मूछों को सदा नीचे रखेंगे और मुगलों से कोई सम्बन्ध न करेंगे'। उसी प्रतिज्ञा का पालन सिसोदिया वंश के लोग आज तक कर रहे हैं। कुछ दिन पूर्व भारत के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू ने उन्हें यह कहकर कि अब आपका राज्य है उस प्रतिज्ञा से विरत किया जो उचित भी है। ऐसी प्रतिज्ञा राणा प्रताप ने इसलिये की थी क्योंकि उस समय मुगलों के डर के मारे न तो कोई हिन्दू अपने विचार प्रकट कर सकते थे और न अपनी प्राचीन मर्यादा का पालन ही।

राणा प्रताप और राजा मानसिंह—मुगल दरबार में राजा मानसिंह बड़ी आदर की दृष्टि से देखा जाता था, किन्तु उससे भी कहीं अधिक वह प्रताप की दृष्टि से पतित और देशद्रोही। अकबर का वरदहस्त मानसिंह के सिर पर था, अतः उसने दक्षिण भारत की विजय के बाद, 'एक बाण से दो शिकार करने के विचार से प्रताप की आन्तरिक स्थिति का अध्ययन करने के लिये वह उदयपुर आया। प्रताप ने उसकी आवभगत का पूरा प्रबन्ध किया। भोजन करते समय मानसिंह ने प्रताप के लड़के अमरसिंह से पूछा 'तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ?' अमरसिंह ने उत्तर दिया उनके सिर दर्द है, अतः आने में असमर्थ हैं। मान समझ गया यह मान नहीं अपमान है। थोड़े ही समय में प्रताप आ पहुंचे और कहने लगे 'मान

तुमने अपने देश के मान को नष्ट किया। भला, मैं तुम्हारे साथ भोजन कैसे कर सकता हूँ। मैं आपके साथ भोजन तब करूँगा जब आप इन मुगलों को देश से निकाल कर स्वयं सम्राट् बनोगे। ये शिक्षाप्रद वाक्य मानसिंह के हृदय में बाण की तरह लगे और वह शीघ्र ही दिल्ली से एक बड़ी सेना के साथ लौटा। इस सेना का सेनापति स्वयं मानसिंह था और प्रमुख योद्धाओं में प्रताप का भाई शक्तिसिंह था। १५७६ ई० में हल्दीघाटी के मैदान में राणा अपने मुट्ठी भर योद्धाओं के साथ सागर की समान उमड़ती हुई मुगल सेना का सामना करने के लिये उतर पड़े। दोनों ओर से मारपीट शुरू हो गई। हिन्दी के कवि श्यामनारायणजी ने कहा भी है—

निर्बल बकरों से बाघ लड़े, भिड़ गये सिंह मृग छौनों से।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी, पैदल बिछ गये बिछौने से॥

सचमुच प्रताप के शूर वीरों की तलवार से मुगलों को 'छठी का दूध याद आने लगा'। युद्ध स्थल वह छोड़ भागने ही वाले थे कि तोपोंवाली सेना ने राजपूतों को परास्त होने के लिये बाध्य कर दिया। प्रताप के घोड़े चातक ने चौकड़ी भरकर मानसिंह के हाथी पर आक्रमण किया भाग्यवश मान बच गया, किन्तु महावत यमलोक सिधारा। अपनी पराजय देख अपने स्वामी भक्त सेवकों की सहायता से प्रताप निकल भागे। विजय पाने के बाद अकबर ने राणा प्रताप की बहुत खोज की, किन्तु उसके सब प्रयास असफल रहे। प्रताप को जंगलों में बड़े कष्ट उठाने पड़े, घास की रोटी खानी पड़ती थी। एक दिन स्वामी भक्त भामाशाह ने अपना सर्वस्व प्रताप के हवाले किया और प्रार्थना की कि इस धन को आप स्वतन्त्रता प्राप्ति में लगायें। इसके बाद चित्तौड़ अजमेर आदि कुछ दुर्गों को छोड़कर प्रताप ने अपना सारा राज्य मुगलों से छीन लिया। किन्तु चित्तौड़गढ़ की स्वतन्त्रता को बिना प्राप्त किये ही वीर प्रताप ने सन् १५९७ में महाप्रयाण किया।

अभ्यास

[क] अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयों के बारे में आप क्या जानते हैं ?

[ख] अकबर की विजयों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए उसके राज्य प्रबन्ध पर एक निबन्ध लिखो।

[ग] अकबर ने अपने राज्य की नींव सुदृढ़ करने के लिये राजपूतों को क्या क्या सुविधायें दीं ? विशद वर्णन कीजिये।

[घ] अकबर की धार्मिक नीति से आप कहाँ तक सहमत हैं ? युक्ति पुरस्सर उत्तर दो।

[ङ] बैरम खाँ, टोडरमल और दीन-इ-इलाही पर संक्षिप्त नोट लिखो।

[च] महाराणा प्रताप का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वे एक पक्के देशभक्त थे।

—o—

चतुर्दश खंड

शिवाजी, औरङ्गजेब और गुरुगोविन्द सिंह

मराठा वंश और शिवाजी—मराठे महाराष्ट्र देश के निवासी हैं। यह प्रदेश पूना के आस-पास है। इस देश का बहुत सा भाग पर्वतों और जङ्गलों से भरा पड़ा है। भूमि ऊँची नीची और मार्ग अत्यन्त पेचीदा है। देश की इन प्राकृतिक अवस्थाओं ने मराठों को वीर, युद्ध-कुशल और सरल स्वभाव वाला बनाने में बड़ा भाग लिया है। इस देश के पर्वतीय दुर्ग मराठों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इन्हीं दुर्गों की सहायता से मराठे अपने शत्रुओं को हराने में सफल हो सके। युद्ध के समय मराठे इन्हीं दुर्गों में छिप जाते थे और अवसर पाकर शत्रु-सेना पर छापा मारते थे।



मराठे कद के छोटे, सुदृढ़ और परिश्रमी थे। चिरकाल तक ये लोग दक्षिण के मुसलमान बादशाहों के आधीन और करदाता रहे। परन्तु इस काल की धार्मिक लहर ने उनके अन्दर अपने धर्म और जाति के लिये विशेष प्रेम उत्पन्न कर दिया। अन्त में शिवाजी ने इन मराठों को मुस्लिम शासन से स्वतन्त्र कराकर एक शक्तिशाली जाति बना दिया।

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन—शिवाजी का जन्म १६२७ ई० में शोनीर के दुर्ग में हुआ। यह दुर्ग पूना से लगभग ५० मील की दूरी पर था। शिवाजी का पिता शाहजी भोंसला बीजापुर दरबार में एक उच्च सैनिक पद पर नियुक्त था और पूना का प्रदेश उसे जागीर में मिला हुआ था। इसके अतिरिक्त कर्नाटक में भी उसकी जागीर थी। शिवाजी की माँ जीजाबाई एक साध्वी, सदाचारिणी और बुद्धिमती स्त्री थी।

शिवाजी का लालन-पालन पूना में अधिकतर अपनी माँ की देख-रेख में हुआ। उस साध्वी ने प्राचीन हिन्दू वीरों की कथाएँ सुना-सुना कर शिवाजी के हृदय में धर्म और जाति की रक्षा का भाव कूट-कूट कर भर दिया। जब शिवाजी कुछ बड़ा हुआ तो दादाजी कोण्डदेव—जो पूना में शाहजी की जागीर का प्रबन्धक था, उसका गुरु बना। उसने शिवाजी को युद्ध विद्या और शासन प्रबन्ध में चतुर कर दिया तथा महाराष्ट्र के धार्मिक नेता गुरु रामदास और तुकाराम की शिक्षा ने उसके मन में हिन्दू धर्म के लिये असीम प्रेम उत्पन्न कर दिया। इन सब बातों का प्रभाव यह हुआ कि शिवाजी ने मराठा जाति को संगठित करने का पक्का निश्चय कर लिया।

प्रारम्भिक विजय—सन् १६४६-४८ में शिवाजी ने अपना सैनिक जीवन बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण से आरम्भ किया। १९ वर्ष की आयु में उसने रियासत बीजापुर के एक दुर्ग तोरणा पर (जो पूना

से बीस मील दक्षिण पश्चिम में है) अधिकार कर लिया और थोड़े ही समय के बाद रायगढ़ पुरन्धर आदि कुछ एक अन्य दुर्गों का स्वामी हो गया। बीजापुर के बादशाह ने क्रोध में आकर शिवाजी के पिता शाहजी को जेल में डाल दिया, परन्तु शिवाजी ने बड़ी बुद्धिमत्ता से उसे छुड़ा लिया। इसके बाद कुछ समय तक शिवाजी चुप रहा और अपनी शक्ति को दृढ़ करता रहा।

बीजापुर से युद्ध—सन् १६५९-६२ ई० में अपनी शक्ति बढ़ा लेने के बाद शिवाजी ने बीजापुर में फिर लूटमार आरम्भ की। अन्त में बीजापुर के बादशाह ने सन् १६५९ ई० में अपने सेनापति अफज़ल खाँ को शिवाजी को दबाने और पकड़ लाने को भेजा। दोनों ने एक दूसरे के साथ बातचीत करना स्वीकार कर लिया। परन्तु दोनों के हृदय शुद्ध न होने के कारण एक दूसरे के गले लगते ही छीना-झपटी हो गई और शिवाजी ने बिछुए से अफज़ल खाँ का वध करा दिया तथा उसकी सेना को भगा दिया। यह घटना प्रतापगढ़ दुर्ग के निकट हुई। इसके बाद बीजापुर के बादशाह ने और भी कई बार सेना भेजी, परन्तु कोई विशेष सफलता न हुई। अन्त में सन् १६६२ ई० में शाह बीजापुर ने शिवाजी के साथ सन्धि कर ली और उसे सारे अधिकृत प्रदेश का स्वतन्त्र स्वामी मान लिया।

मुगलों से युद्ध—सन् १६६३-८० ई० में अफज़ल खाँ को हराने के बाद शिवाजी का साहस बहुत बढ़ गया और उसने मुगल प्रदेश पर भी छापे मारना आरम्भ कर दिया। औरङ्गजेब ने यह देखकर अपने मामा शाइस्ता खाँ को, जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था उसके विरुद्ध भेजा। शाइस्ता खाँ ने मराठा प्रदेश पर आक्रमण किया। दो तीन वर्ष इस युद्ध में बीत गये। इसी बीच में शाइस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार कर लिया, परन्तु एक रात शिवाजी मावले थे। मराठा सैनिकों के साथ बरात के रूप में पूना में प्रवेश

करके मुगलों पर धावा बोल दिया। अनेकों मुगल सैनिक मारे गये, शाइस्ता खाँ स्वयं कठिनाई से प्राण बचा कर भाग निकला, परन्तु उसका पुत्र मारा गया। उससे अगले वर्ष सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत को लूटा और बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की।

शाइस्ता खाँ की असफलता के बाद औरङ्गजेब ने पहले राजकुमार मुअज्जम और उसके असफल रहने के बाद राजा जयसिंह को, जो उसका सब से वीर जनरल था, शिवाजी के विरुद्ध भेजा। जयसिंह ने कुछ एक स्थानों पर विजय प्राप्त की और शिवाजी को (पुरन्धर के दुर्ग में घेरकर) औरङ्गजेब की अधीनता मानने और आगरे में बादशाह के दरबार में उपस्थित होने को मना लिया। शिवाजी ने २० दुर्ग भी मुगलों को दे दिये। परन्तु जब शिवाजी औरङ्गजेब के दरबार में उपस्थित हुआ तो उसका अपमान किया और उसे बन्दी बना दिया गया। किन्तु शिवाजी बड़ी चतुराई से मिठाई के टोकरे में छिपकर भाग निकला और वापिस दक्षिण आ पहुँचा। यह घटना १६६६ ई० की है। इसके बाद शिवाजी मुगलसाम्राज्य का घोर शत्रु बना।

शिवाजी का राज्याभिषेक—आगरे से लौट कर शिवाजी ने फिर कई क़िले जीत लिये और सन् १६७० ई० में सूरत को लूटा। सन् १६७४ ई० में रायगढ़ को राजधानी बनाकर बड़े सजधज से अपना राज्याभिषेक मनाया। इसके बाद कर्नाटक के प्रदेशों में जिंजी, वैल्लोर तथा अन्य कई दुर्ग जीते। सन् १६८० ई० में ५३ वर्ष की आयु में रायगढ़ के स्थान में उसकी मृत्यु हो गई।

शिवाजी का राज्य प्रबन्ध—शिवाजी का राज्य-प्रबन्ध अत्यन्त प्रशंसनीय था। सारा प्रदेश दो भागों में बँटा हुआ था। एक स्वराज्य जो कि सीधा शिवाजी की अधीनता में था और दूसरा मुगलाई जो आस-पास के कुछ एक जिलों पर सम्मिलित था और जो मराठों की अधीनता में न था, परन्तु जहाँ से चौथ और सरदेशमुखी नामक टैक्स उगाहे जाते थे।

(१) शासन-प्रबन्ध—शासन-प्रबन्ध शिवाजी के अपने हाथों में था, परन्तु उसने राजकीय कामों में सहायता के लिये आठ मन्त्रियों की सभा बनाई हुई थी, जिसे 'अष्ट-प्रधान' कहते थे। प्रत्येक मन्त्री के अधीन राज्य प्रबन्ध का एक एक विभाग था। प्रधान मन्त्री पेशवा कहलाता था और वह सदा ब्राह्मण हुआ करता था। शिवाजी उस सभा की सम्मति से राज्य का प्रबन्ध करता था। सारा देश सूबों और जिलों में बाँटा हुआ था। प्रत्येक जिले के प्रबन्ध के लिये राजकीय अधिकारी नियुक्त थे। गाँव के नम्बरदार को पटेल या मुखिया कहते थे। गांव का प्रबन्ध पञ्चायतें करती थीं।

(२) आर्थिक-प्रबन्ध—कृषकों से कुल उपज का ⅖ भाग लगान के रूप में वसूल किया जाता था जो नकदी या अन्न के रूप में दिया जा सकता था। उन पर किसी प्रकार की कठोरता नहीं की जाती थी, वरन् अकाल के दिनों में कृषकों को कुछ रुपया बीज आदि मोल लेने के लिये ऋण के रूप में दिया जाता था, जिसे किसान अपनी शक्ति के अनुसार वार्षिक किश्तों में चुका देते थे। भूमिकर के अतिरिक्त राजकीय आय के और भी कई साधन थे, जैसे चौथ और सरदेशमुखी। इसके अतिरिक्त लूट का धन भी राजा के पास जमा होता था।

(३) सैनिक-प्रबन्ध—शिवाजी उच्चकोटि का सैनिक अधिकारी और उसका सैनिक प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उसके पास सशस्त्र सेना थी, जिसमें पैदल और घुड़सवार दोनों सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त उसके पास २०० लड़ाई के जहाजों का एक बेड़ा और ८० के लगभग तोपें थीं। कमांडर-इन-चीफ को सेनापति या सरनौबत कहते थे। सेना को नकद वेतन दिया जाता था। दुर्गों की विशेष रूप से रक्षा की जाती थी और उनको अच्छी दशा में रखने के लिये बहुत धन खर्च किया जाता था। शिवाजी का सैनिक नियन्त्रण भी उच्चकोटि का था। किसी योद्धा को युद्धक्षेत्र में स्त्री को साथ

जाने की आज्ञा न थी और लूट-मार का सारा धन राज के पास पहुँचाना पड़ता था। शिवाजी की मृत्यु के समय उसके पास कोई तीस-चालीस हजार घुड़सवार और एक लाख पैदल सेना थी।

शिवाजी का चरित्र—शिवाजी जन्म से ही नेता था। उसने अपने आपको एक वीर सेनापति और योग्य प्रबन्धकर्त्ता सिद्ध किया। उसका सबसे प्रसिद्ध कार्य यह है कि उसने मराठों में जातीयता का प्रबल भाव उत्पन्न किया, और मरहठा जाति को, जो रेत की कणों की भाँति बिखरी हुई थी, एक संयुक्त जाति बना दिया।

निजी जीवन में शिवाजी अत्यन्त सदाचारी और पवित्रात्मा व्यक्ति था। उसे अपने धर्म से अटूट प्रेम था, परन्तु वह दूसरे धर्मों से घृणा नहीं करता था। वह मन्दिरों के लिये दान दिया करता था और मुसलमान पीरों का बड़ा मान करता था। मुसलमान इतिहास लेखक खाफीखाँ लिखता है कि 'शिवाजी मसजिदों, स्त्री-जाति और कुरान शरीफ के अपमान की कभी आज्ञा न देता था। जब कभी कुरान शरीफ की कोई प्रति उसके हाथ आती तो वह बड़े आदर के साथ किसी मुसलमान को दे देता था और वह स्त्रियों का बड़ा सम्मान करता था' शिवाजी अनपढ़ था, परन्तु बड़ा समझदार था। उसे योग्य पुरुषों के चुनने में विशेष योग्यता थी और वह राजनीति की चालों में बड़ा चतुर था।

मराठों की युद्ध विधि—प्रारम्भ में मराठे खुले मैदान में नहीं लड़ते थे। उनकी युद्ध विधि यह थी कि जब शत्रु सेना आगे निकल जाती थी और रसद का सामान पीछे होता था तो वे दोनों के बीच रुकावट उत्पन्न कर देते थे और रसद को लूट लेते थे या शत्रु सेना के इकेले दुकेले जत्थों पर छापा मारते और अन्य सैनिकों के आने से पहले भाग जाया करते थे। उनकी सफलता का एक रहस्य यह था कि वे बड़े फुर्तीले और चुस्त थे और अत्यन्त शीघ्रता से आ जा

सकते थे। प्रत्येक सैनिक के पास भोजन सामग्री और कपड़े होते थे। इसलिये उन्हें भोजन सामग्री ढोने वाले विभाग की आवश्यकता नहीं थी। वे ऐसे स्थान पर छापा मारते थे, जहाँ उनके आने की सम्भावना भी न होती थी। उनकी सफलता का दूसरा रहस्य यह था कि उनके सैनिक विशेषतया मावली लोग पर्वतों पर चढ़ने उतरने में बड़े निपुण थे और तीसरा रहस्य यह था कि उनके युद्ध प्रायः अपने देशों में होते थे, जहाँ की भूमि से वे भलीभाँति परिचित थे। ऐसी युद्ध विधि को 'छापामार युद्ध' कहते हैं।

औरङ्गजेब—औरङ्गजेब मुगल वंश का अन्तिम महान सम्राट था। सिंहासनारोहण के समय उसकी आयु चालीस वर्ष की थी। उसने सन् १६५८ से सन् १७०७ ई० तक उनचास वर्ष राज्य किया। उसके शासनकाल को दो लगभग समान भागों में बाँटा जा सकता है। यह सारा समय उत्तरी भारत में बीता और सम्राट् ने दक्षिण की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया।

सन् १६८२ ई० से १७०७ ई० यह समय दक्षिण की विजय अर्थात् बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों और मराठों के विरुद्ध युद्ध करने में बीता।

उत्तरी भारत की घटनायें

(१) **आसाम पर चढ़ाई**—सन् १६६३ ई० शुजा की हार के पश्चात् औरङ्गजेब ने मीर जुमला को बङ्गाल का सूबेदार नियुक्त किया था। उसने आसाम पर चढ़ाई की, क्योंकि वहाँ के राजा ने थोड़े से मुगल प्रदेश पर अधिकार कर लिया था, परन्तु देश दुर्गम होने और मौसमी ज्वर के कारण मीर जुमला को विशेष सफलता न हुई और लौटते समय ढाका के निकट उसकी मृत्यु हो गई।

(२) **अराकान की विजय**—सन् १६६६ ई० मीर जुमला की मृत्यु हो जाने पर औरङ्गजेब का मामा शाइस्ताखाँ बङ्गाल का सूबेदार

युक्त किया गया। उसे अराकान के राजा के साथ युद्ध करना पड़ा, क्योंकि वहाँ के समुद्री लुटेरों ने लूट-मार मचा रखी थी। उसने अराकान के राजा से चटगाँव जो लुटेरों का अड्डा था जीत लिया और वहाँ से समुद्री डाकुओं का अन्त कर दिया।

(३) शिवाजी से युद्ध—सन् १६६३-१६८० ई० मराठा सरदार शिवाजी ने मुगल प्रदेश पर हाथ मारना आरम्भ कर दिया। शाइस्ता खाँ (जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था) शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया। परन्तु शिवाजी ने पूना के स्थान पर रात के समय छापा मार कर उसे हरा दिया। औरङ्गजेब ने इसके बाद पहले राजकुमार मुअज्जम और फिर राजा जयसिंह को उसके विरुद्ध भेजा। शिवाजी ने कुछ शर्तों पर अधीनता स्वीकार कर ली और आगरे में उपस्थित हुआ। वहाँ उसे बन्दी बना लिया गया, परन्तु वह चतुराई से भागकर दक्षिण पहुंच गया। शिवाजी अन्त तक मुगलों के विरुद्ध लड़ता रहा और उसने कई दुर्ग वापिस छीन लिये। अन्त में १६८० ई० में उसका देहान्त हो गया।

(४) जाटों का विद्रोह—सन् १६६९ ई० मथुरा उसके आस-पास के प्रदेश में बहुत से जाट रहते थे, जो बड़े बलवान् और वीर लड़ाकू थे। औरङ्गजेब की धार्मिक नीति से अप्रसन्न होकर उन्होंने सन् १६६९ ई० में मथुरा में विद्रोह कर दिया। उनका नेता गोकुल जाट था। मुगल सेना ने इस विद्रोह को दबा दिया और गोकुल मारा गया, परन्तु जाट लोग औरङ्गजेब के सारे राज्यकाल में मुगलों को तंग करते रहे। औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् जाट और भी शक्तिशाली बन गये और मुगल साम्राज्य के लिये बड़े हानिकारक सिद्ध हुये।

(५) सतनामियों का विद्रोह—सन् १६७२ ई० सतनामी हिन्दू साधुओं का एक दल था। ये लोग देहली के निकट नारनौल में रहा करते थे और उनकी संख्या चार-पाँच हजार थी। वे लोग धार्मिक

विचारों के थे और थोड़ी बहुत कृषि और कुछ व्यापार भी थे। सन् १६७२ ई० में उन्होंने विद्रोह कर दिया। इसका कारण था कि एक सरकारी प्यादे ने किसी सतनामी से दुर्व्यवहार किया था। औरङ्गजेब ने उन्हें दबाने के लिये सेना भेजी। सतनामी वीरता से लड़े और आरम्भ में उन्हें कुछ सफलता भी परन्तु अन्त में हार गये और सतनामियों का सर्वनाश किया गया।

(६) राजपूतों से युद्ध—सन् १६७९-८१ ई० में मार (जोधपुर) का महाराजा जसवन्तसिंह जो औरङ्गजेब की ओर जमरूद का फौजदार था, १६७८ ई० में मर गया और उसकी पत्नि और पुत्र मारवाड़ को चले आये। मार्ग में बादशाह ने उसके पुत्र किसी कारण देहली में रोकना चाहा, परन्तु वीर राजपूत सर दुर्गादास राठौर उसे निकालकर ले गया। बादशाह की इस पर राजपूत बहुत भड़क उठे। उधर सन् १६७९ ई० में जजिया दो लगा दिया गया, इससे वे और भी क्रुद्ध हो गये और युद्ध गया। मारवाड़ और मेवाड़ दोनों मिल गये। औरंगजेब ने पुत्र अकबर के अधीन उनके विरुद्ध सेनायें भेजीं और उन पक्षों को बहुत हानि हुई। अकबर राजपूतों से मिल गया, औरंगजेब ने एक पत्र लिखकर राजपूतों के हृदय में उसके में सन्देह डाल दिया और अकबर को भागना पड़ा। सन् १ ई० में राजपूतों के साथ सन्धि हो गई, परन्तु इस युद्ध का साम्रा के पक्ष में बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि एक तो धन बड़ा हुआ और दूसरे राजपूत सदा के लिये मुगल साम्राज्य के शत्रु गये और राजपूतों और मुगलों का पारस्परिक मेल जो अकबर समय से चला आता था और जिस पर मुगल साम्राज्य आ था सदा के लिये समाप्त हो गया। अब औरंगजेब को दक्षिण के उनकी हार्दिक सहायता के बिना लड़ने पड़े।

दक्षिण की लड़ाइयाँ—राजपूतों के साथ सन्धि कर लेने के औरंगजेब सन् १६८१ ई० में दक्षिण चला गया और अपनी आयु के शेष छब्बीस वर्ष वह वहीं रहा और वहीं सन् १७०७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। दक्षिण जाने में उसके दो उद्देश्य थे (१) एक वह बीजापुर और गोलकुण्डा के शीया राज्यों को जीतना चाहता और (२) दूसरे वह मराठों को कुचलना चाहता था।

(१) बीजापुर और गोलकुण्डा पर विजय—औरंगजेब को दोनों राज्यों के विरुद्ध शिकायतें थीं। एक तो ये राज्य मराठों सहायता करते थे और दूसरे इन दोनों रियासतों के बादशाह शीया थे और क्योंकि औरंगजेब दृढ़ विचारों का सुन्नी था, इसलिये उन्हें समाप्त कर देना चाहता था। तीसरे वह अपने साम्राज्य बढ़ाना चाहता था।

औरंगजेब ने राजकुमार आजम को बीजापुर के विरुद्ध भेजा, किन्तु उसे कोई विशेष सफलता न हुई। इसलिए सम्राट् स्वयं वहाँ गया और लगभग एक वर्ष के घेरे के बाद सन् १६८६ ई० में बीजापुर पर विजय पाई। वहाँ के बादशाह (सिकन्दर) को पेंशन देकर राज्य से पृथक् कर दिया गया और बीजापुर मुगल राज्य में मिला लिया गया।

सन् १६८७ ई० में गोलकुण्डा पर घेरा डाला गया। वहाँ का बादशाह अबुलहसन बड़ा विलासी और कोमलकान्ति व्यक्ति था, परन्तु जब उसे लड़ना पड़ा तो उसने बड़ी वीरता से मुगलों का मुकाबिला किया और उन्हें बड़ी हानि पहुँचाई। उसके एक जनरल अब्दुर्रजाक ने वीरों की भांति दुर्ग की रक्षा की। जब औरंगजेब को वहाँ सफलता होती न दिखाई दी तो उसने दुर्ग-रक्षक को घूस देकर अपनी ओर गाँठ लिया। और उसने दुर्ग का द्वार खोल दिया। अब्दुर्रजाक वीरों की भांति लड़ता हुआ घावों से घायल हो गया।

और अन्त में मुगलों के हाथ आ गया। गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार हो गया।

दक्षिण के इन राज्यों के जीते जाने से मराठों की शक्ति बढ़ गई और वे बे-रोक-टोक लूट-मार करने लगे।

(२) मराठों से युद्ध—बीजापुर और गोलकुण्डा पर विजय पाने के बाद केवल एक मराठों की शक्ति ही बाकी थी जो औरंगजेब के समस्त भारत का एक मात्र स्वामी बनने के मार्ग में बाधा थी। अतः औरंगजेब ने मराठों की ओर ध्यान दिया और बीस वर्ष तक उनके साथ युद्ध में लगा रहा। परन्तु मराठों के अनोखे युद्ध करने के ढंग ने उसकी पेश न जाने दी।

शिवा जी उस समय मर चुका था और उसका पुत्र सम्भाजी राजा था। वह अत्यन्त विलासी और अयोग्य था। उसने कुछ काल तो मुगलों का मुकाबला किया, परन्तु सन् १६८९ ई० में सम्भाजी मुगलों के हाथों में पड़ गया और वध किया गया। उसका पुत्र साहूजी कैद हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि औरंगजेब अपने प्रयोजन में सफल हो गया है, परन्तु यह उसके पतन का आरम्भ था। मराठे सम्भाजी के भाई राजा राम की अधीनता में मुगलों का खूब सामना करते रहे और उसकी मृत्यु सन् (१७०० ई०) पर उसकी विधवा तारा बाई की अधीनता में युद्ध चलता रहा। वह बड़ी तीव्र बुद्धि और वीर स्त्री थी। उसने युद्ध को बड़े साहस से चालू रखा। मराठों के युद्ध का ढंग अनोखा था। वे कभी खुले मैदान में तो लड़ते ही न थे। वे पर्वतों में छिपे रहते थे और अवसर पाकर शत्रु को हानि पहुँचाते तथा भोजन-सामग्री को लूट लेते थे। इसके प्रतिकूल मुगल सेना दुर्बल और विश्राम-प्रिय हो चुकी थी। उनमें अनुशासन का नाम भी न था।

अन्त में औरंगजेब निराश होकर लौट पड़ा, परन्तु सन् १७०७ में अहमदनगर के स्थान पर मृत्यु की गोद में सदा के लिये सो गया। मराठों के गुरीला युद्ध तथा मुगल सेना की शिथिलता ने औरंगजेब को मराठों के विरुद्ध सफल न होने दिया।

दक्षिण युद्ध के परिणाम मुगल साम्राज्य के लिये हानिकारक सिद्ध हुये। निरन्तर युद्धों से सेना दुर्बल और साम्राज्य की आर्थिक अवस्था शिथिल हो गई। उत्तरी भारत में सिक्खों और जाटों ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया और प्रान्तीय गवर्नर केन्द्रीय शासन से विमुख हो गये जिससे मुगल साम्राज्य का पतन निकट आ गया।

औरङ्गजेब का चरित्र—औरंगजेब मुगल वंश का एक अति प्रसिद्ध शासक था। उसके चरित्र में अधिक स्पष्ट बात यह है कि वह पक्का सुन्नी मुसलमान और शरीयत का पूर्णतया पालक था। उसे कुरान शरीफ कण्ठस्थ था। उसका जीवन सरलता का उत्कृष्ट आदर्श था। वह निजी आवश्यकता के लिये कोष से एक पाई का व्यय भी पाप समझता था और टोपियाँ बनाकर तथा कुरान शरीफ की प्रतियाँ लिखकर निर्वाह करता था। उसे गाने, बजाने और भड़कीले कपड़ों से घृणा थी और उसने देश में राग रंग बन्द कर रखा था। वह एक वीर सैनिक तथा अनुभवी सेनापति था और घोर युद्ध में भी साहस न छोड़ता था। इसके अतिरिक्त वह एक परिश्रमी राजा था और राज्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य की देखभाल स्वयं करता था। वह राजनीति में भी बड़ा चतुर था। वह इरादे का बड़ा पक्का था और अपने मन का भेद किसी पर प्रकट न होने देता था। उसे विद्या से भी बड़ा प्रेम था और वह आयु पर्यन्त अध्ययन करता रहा।

परन्तु वह बहुत ही अविश्वासी स्वभाव का था, यहाँ तक कि वह अपने पुत्रों पर भी विश्वास न करता था। इसके अतिरिक्त उसने अपनी धर्मान्धता से हिन्दुओं और विशेषतया राजपूतों को अपना शत्रु बना लिया था।

धार्मिक कट्टरता—औरङ्गजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। इस्लाम के प्रति उसे अतीव श्रद्धा थी। वह अपना जीवन कुरान शरीफ के आदेशों के अनुसार बिताता था। यही कारण था कि अपनी हिन्दू प्रजा के साथ उसका व्यवहार अच्छा न था। कई स्थानों पर हिन्दू मन्दिर गिरा दिये गये, हिन्दुओं के लिये सरकारी नौकरी के द्वार बन्द कर दिये गये और उनको पालकी में या अरबी घोड़े पर सवार होने का निषेध कर दिया गया। सन् १६७६ ई० में जजिया लगा दिया गया जो कि सन् १५६४ ई० में अकबर ने हटा दिया था। औरङ्गजेब शिया मत का भी विरोधी था। दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को समाप्त करने का एक मुख्य कारण यह था कि उन राज्यों के बादशाह शिया थे और उनके मंत्री हिन्दू थे। औरङ्गजेब की धार्मिक नीति साम्राज्य के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई।

औरङ्गजेब की असफलता के कारण—बाह्य रूप में औरङ्गजेब एक अत्यन्त सफल शासक था। उत्तरी भारत में उसे प्रत्येक युद्ध में सफलता हुई। दक्षिण में उसने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों को जीता और यदि वह मरहठों को हरा न सका, तो मराठे भी उसके विरुद्ध कोई पर्याप्त सफलता न पा सके। उसका साम्राज्य भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ था और इतना विस्तृत था कि उससे पहले किसी मुसलमान बादशाह का साम्राज्य इतना बड़ा न था और भारत में कोई ऐसी शक्ति शेष न थी, जो मुगल साम्राज्य का सामना कर सकती। परन्तु वास्तव में यह बात है कि औरङ्गजेब सम्राट के रूप से असफल सिद्ध हुआ और उसके शासनकाल में ही मुगल साम्राज्य के पतन का आरम्भ हो गया था। उसकी असफलता के कारण नीचे लिखे हैं:—

(१) धार्मिक नीति—औरङ्गजेब पक्का सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को नौकरियों से पृथक कर दिया, उनके मन्दिर गिरा

गये और उन पर जजिया लगा दिया। परिणाम यह हुआ कि औरङ्गजेब के शत्रुओं अर्थात् मराठों और सिक्खों के साथ उसकी हिन्दू प्रजा की सहानुभूति हो गई। इसके अतिरिक्त वीर राजपूत जो अकबर के समय से लेकर मुगल साम्राज्य के सच्चे सहायक और शुभचिन्तक चले आते थे, मुगल साम्राज्य के घोर शत्रु बन गये और औरङ्गजेब को दक्षिण के युद्ध उनकी हार्दिक सहायता के बिना लड़ने पड़े।

(२) बीजापुर और गोलकुण्डा की विजय—औरङ्गजेब ने इन राज्यों को जीत कर एक भयानक राजनैतिक भूल की; क्योंकि इससे मराठों की शक्ति बढ़ गई। इन राज्यों के सैनिक मराठी सेना में आ भरती हुए। इसके अतिरिक्त इन राज्यों को जीत लेने से मुगल साम्राज्य इतना विशाल हो गया कि उसको वश में रखना असम्भव हो गया।

(३) दक्षिण की लड़ाइयाँ—दक्षिण में निरन्तर २६ वर्ष की लड़ाइयों ने न केवल कोष ही रिक्त कर दिया, परन्तु राज्य-प्रबंन्ध को भी शिथिल कर दिया। इसी समय में सिक्खों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया। जाटों ने विद्रोह कर दिये और ज़मीदारों ने मुगल वायसरायों का प्रतिरोध करना आरम्भ कर दिया।

(४) अयोग्य उत्तराधिकारी—औरंगजेब का स्वभाव अत्यन्त संदेहशील था। उसके इस स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि उसके लड़कों को किसी प्रकार की शासन-शिक्षा न मिल सकी। इसलिए उसके उत्तराधिकारी आलसी, शक्तिहीन, दुराचारी तथा निकम्मे सिद्ध हुए और वे अपने मन्त्रियों के हाथों में कठपुतली बने रहे। इससे केन्द्रीय शासन का अन्त हो गया।

(५) विदेशी राज्य—भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या के लिये मुगल राज्य एक विदेशी राज्य था। अतः वह त्याग और देश-

भक्ति जो किसी साम्राज्य की स्थिरता के लिये आवश्यक है, लो
के हृदय में न थी। लोगों को राज्य के साथ कोई विशेष प्रेम न

(६) निरंकुश राज्य—मुगल साम्राज्य निरंकुश राज्य था
इस प्रकार का राज्य केवल उस समय तक चल सकता है जब
बादशाह दूरदर्शी और शक्तिशाली हों। जब राज्य किसी निक
बादशाह के हाथ आ जाता है तो निश्चय ही उसका पतन हो ज
है। औरंगजेब के पश्चात् सब मुगल बादशाह निकम्मे
शक्तिहीन थे और यह बात पतन का एक बड़ा कारण सिद्ध हुई।

(७) उत्तराधिकारी नियुक्त करने के नियम का न होना—
मुगलों में उत्तराधिकारी नियुक्त करने का कोई विशेष नियम न
इसलिये जब कभी कोई बादशाह मरता, तो उसके लड़कों में रा
धिकार पाने के लिये युद्ध छिड़ जाता था। जहाँगीर, शाहज
औरंगजेब आदि की मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिये गृहयुद्ध हुए,
साम्राज्य के लिये अतीव हानिकार सिद्ध हुए। ये युद्ध औरंग
की मृत्यु के ३० वर्ष पश्चात् तक के समय में तो बहुत अधिक
गये। इन युद्धों में कई राजकुमार, मुगल सरदार और सुशि
सैनिक मारे गये।

(८) अमीरों की अयोग्यता—इसमें कोई संदेह नहीं
अब्दुररहीम, आसफ खाँ, महाबत खाँ, मीरजुमला इत्यादि बड़े
कोटि के अमीर थे। वे मुगल साम्राज्य के स्तम्भ थे और उन्ह
मुगल राज्य को सुदृढ़ करने में बड़ा भाग लिया था, परन्तु उनके वं
अर्थात् उनके पुत्र पौत्र बड़े विलासप्रिय और अयोग्य सिद्ध हु
उनमें अपने पूर्वजों की योग्यता लेश-मात्र भी न थी। उच्चकोटि
अमीरों का अभाव भी इस साम्राज्य के पतन का एक भा
कारण था।

(९) मुगल सेना की निर्बलता—असीम धन और विला
के कारण मुगल सेना भी विश्रामप्रिय और निर्बल हो गई

अफसर पालकियों में बैठकर युद्ध-क्षेत्र में जाते थे। सैनिक अपने साथ अपनी स्त्रियों को भी ले जाते थे। बाबर के समय जैसा साहस और वीरता उनमें नाममात्र भी न थी। मुगल सेना की निर्बलता शाहजहाँ के समय से ही प्रकाशित हो गई थी, जब कि वह कई बार प्रयत्न करने पर भी कन्धार का नगर ईरानियों से वापस न ले सकी। औरङ्गजेब के राज्यकाल में तो यह निर्बलता और भी स्पष्ट हो गई थी।

(१०) प्रान्तों की स्वतन्त्रता—औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् कोई योग्य शासक न रहा, तो सूबेदार अपने अपने प्रान्तों में स्वतंत्र हो गये। बंगाल में अलीवर्दी खाँ, अवध में सआदतअली खाँ, दक्षिण में निजामुलमुल्क आसफजाह और रुहेलखण्ड में रुहीले मुहम्मदशाह रंगीले के समय स्वतन्त्र बन बैठे।

(११) विदेशी आक्रमण—मुगल साम्राज्य की इस दुर्बलता से लाभ उठाकर नादिरशाह और अहमदशाह ने भारत पर आक्रमण किये और इस साम्राज्य की रही-सही शक्ति को भी मिटा दिया।

(१२) साम्राज्य विस्तार—औरङ्गजेब के समय में मुगल साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था और उस काल में जब कि आने जाने के साधन इतने अच्छे न थे और समाचार शीघ्र भेजने का उचित प्रबन्ध नहीं हो सकता था, इतने बड़े साम्राज्य को अपने अधीन रखना अत्यन्त कठिन था। इसलिये साम्राज्य का विस्तार भी उसके पतन का एक कारण सिद्ध हुआ।

(१३) नई शक्तियाँ—मराठे और सिक्ख बड़ी शीघ्रता से अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। मराठे दक्षिण से उत्तरी भारत तक छा गये थे और सिक्खों ने पंजाब पर अधिकार जमा लिया था। इसके अतिरिक्त यूरोपीय जातियों ने भी भारत में अपने पैर जमा लिये थे। इससे मुगल साम्राज्य का सर्वथा अन्त हो गया।

(१४) अच्छे यौद्धिक वेड़े का न होना—कई ऐतिहासिकों का विचार है कि अच्छे यौद्धिक वेड़े का न होना भी साम्राज्य के पतन का एक कारण था। उनका मत है कि यदि जहाजी वेड़ा साम्राज्य के पतन को बचा नहीं सकता था, तथापि योरप के आक्रमण-कर्ताओं का मुकाबला करके उस पतन को कुछ समय के लिये रोक सकता था।

गुरुगोविन्द सिंह—सन् १६६६-१७०८ ई० में सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह जी थे। उन्होंने तो इस सम्प्रदाय की काया पलट दी। वह सन् १६६६ ई० में पटना में उत्पन्न हुये और अपने पिता गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान के बाद छोटी-सी आयु में ही गद्दी पर बैठे। इसके बाद बीस वर्ष तक वह पहाड़ों में रह कर अपनी शक्ति को दृढ़ करते रहे। गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्खों को नये सिरे से संगठित किया। सिक्खों के लिये आवश्यक हुआ कि वे अमृतपान करने की रीति का पालन करें—केश, कड़ा, कच्छा, कृपाण और कंघा अपने पास रखें। अब वे सिक्ख के स्थान पर सिंह कहलाने लगे और इस दल का नाम खालसा रखा गया। इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्खों के धार्मिक दल को योद्धा दल बना दिया। गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन का अधिक भाग मुगलों के साथ युद्ध लड़ने में बीता और उन युद्धों में उनके चारों पुत्र और कई आज्ञाकारी सिक्ख काम आये। परन्तु गुरुजी ने अधीनता स्वीकार न की। अन्त में औरङ्गजेब ने उन्हें दक्षिण बुला भेजा, किन्तु उनके वहाँ पहुँचने से पहले औरङ्गजेब की मृत्यु हो चुकी थी। सन् १७०८ ई० में अबचल नगर (नान्देर के स्थान) पर जो दक्षिण में है गुरु गोविन्द सिंह जी की मृत्यु हो गई। उस स्थान को सिक्ख श्री हुजूर साहिब कहते हैं। अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने एक व्यक्ति बन्दा बैरागी को सिक्खों का नेता नियत किया।

बन्दा वैरागी और गुरु गोविन्द सिंहजी—बन्दा बैरागी को जिसे बन्दा बहादुर भी कहते हैं, मूल नाम लक्ष्मणदेव था।

जाति से राजपूत और पुँछ में स्थित राजौडी नामके स्थान का निवासी था। युवावस्था में ही वह बैरागी हो गया था और गोदावरी नदी के तीर पर रहा करता था। गुरु गोविन्द सिंह साहिब जब दक्षिण गये, तो उनकी उससे भेंट हुई। उन्होंने उसे फिर से क्षात्र धर्म अपनाने का उपदेश दिया और उसे सिक्खों का सैनिक नेता नियुक्त किया। बन्दा बैरागी पंजाब में चला आया और सिक्खों की एक विशाल संख्या एकत्र करके मुगल साम्राज्य पर छापे मारने लगा। सरहिन्द (यमुना और सतलज के मध्यवर्ती) प्रदेश को उसने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वहाँ का सूबेदार वजीर खाँ मारा गया। इसके बाद उसने सिक्ख मत में कुछ परिवर्तन करना चाहा, जिस कारण बहुत से सिक्ख पृथक् हो गये। अन्त में सन् १७१६ ई० में फरुख सय्यर के शासनकाल में बन्दा अपने आठ सौ साथियों सहित पकड़ा गया और उसको तथा उसके साथियों को घोर कष्ट देकर बध कर दिया गया।

गुरु गोविन्द और बन्दा बैरागी के बाद—बन्दा के बध के बाद सिक्खों का कोई नेता न रहा और पंजाब के मुसलमान सूबेदारों ने उनके विरुद्ध कठोरता की नीति धारण की। इसलिये कुछ समय के लिये उन्हें पर्वतों और जंगलों का आश्रय लेना पड़ा, परन्तु उस समय भी सिक्ख सुअवसर की प्रतीक्षा में थे। इसलिये जब नादिर-शाह और विशेषतः अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के कारण पंजाब में चारों ओर हलचल मच गई, तो सिक्खों ने उस अवसर से लाभ उठाया और वे पर्वतीय और जंगली प्रदेशों से निकल कर मैदानी प्रदेशों में आ पहुँचे और छोटे छोटे जत्थे बनाकर शासकों से लड़ाइयाँ लड़ने लगे। उन जत्थों को मिसलें कहते थे और प्रत्येक जत्थे का एक सरदार या जत्थेदार होता था। उन मिसलों ने पंजाब के बहुत से प्रदेश पर अधिकार कर लिया और कई छोटी छोटी स्वाधीन रियासतें स्थापित कर लीं। ये मिसलें कभी कभी आपस में लड़ती रहती थीं, परन्तु मुसलमानों के मुकाबले में इकट्ठी हो जाती थीं। उन मिसलों

में से एक का सरदार चढ़तसिंह था। उसके पोते रणजीत सिंह ने शेष मिसलों पर विजय पाकर पंजाब में सिक्ख राज्य स्थापित किया।

अभ्यास

[क] शिवाजी के बाल्यकाल का सामान्य परिचय देकर उनके राज्य प्रबन्ध पर एक निबन्ध लिखो।

[ख] शिवाजी का चरित्र चित्रण करते हुए मराठों की युद्ध विधि पर प्रकाश डालिये।

[ग] औरंगजेब की उत्तरी और दक्षिणी विजयों से आप क्या समझते है ? संक्षेप में उत्तर दो।

[घ] औरंगजेब के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उसकी असफलताओं के कारण समझाओ।

[ङ] गुरु गोविन्द सिंह, और बन्दावीर वैरागी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

—o—

पञ्चदश खण्ड

विदेशियों का भारत में आना

भारत का व्यापारिक सम्बन्ध योरोप वालों से बहुत पुराना है। पहले यह व्यापार रक्तसागर के मार्ग से होता था। किन्तु १५वीं शताब्दी में इस मार्ग पर तुर्कों का अधिकार हो गया। जिसका फल यह हुआ कि कुछ दिनों के लिये योरोप की रमणियाँ हमारे देश की निर्मित वस्तुओं के लिये छटपटाने लगीं। अपनी आर्थिक स्थिति इस प्रकार डावाँडोल होते देख योरोप वासियों को यह धुन लगी कि शीघ्रातिशीघ्र कोई दूसरा मार्ग ढूँढा जाय, जो तुर्कों के आधिपत्य में न हो। इस मार्ग के अन्वेषण में सर्व प्रथम कोलम्बस १४९२ ई० में घर से निकला, किन्तु इधर-उधर के चक्कर

काटने के बाद उसने एक नई दुनियाँ का पता लगाया, जिसे आज हम अमेरिका के नाम से जानते हैं। अमेरिका की, धनसम्पत्ति का दिग्दर्शन करते ही कोलम्बस ने भारत की कल्पना की जो वस्तुतः असत्य थी। इसके बाद १४९८ में पुर्तगाल निवासी वास्को-डि-गामा ने अपने साथियों के साथ दक्षिणी अफ्रिका का भ्रमण करने के बाद आशा अन्तरीप का चक्कर काटकर कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। यहाँ पहुँचने पर वास्को-डि-गामा ने कालीकट के हिन्दूराज जमोरिन से व्यापार करने की अनुमति ले ली। इस तरह सर्वप्रथम पुर्तगाली और इसके बाद देखादेखी डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी भारत के साथ व्यापार करने को व्याकुल हो उठे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय यह देश सचमुच 'सोने की चिड़िया' था, जिसके पंख नोचने के लिये ही उपरोक्त देश झपटे थे। अस्तु, वे लोग पूर्ण सफल हुए और हमारी यह सोने की चिड़िया आज लुञ्ज-पुञ्ज होकर किसी तरह जी रही है।

भारत और पुर्तगाली साम्राज्य लिप्सा—आशा अन्तरीप का मार्ग पुर्तगालियों ने ही ढूँढ़ा था। इसलिये युरोपीय जातियों में सर्व प्रथम पुर्तगाली ही हमारे सम्पर्क में आये। वास्को-डि-गामा अपने व्यापार का यहाँ कार्यक्षेत्र बनाकर कुछ ही दिनों में अपने देश को लौट गया। इसके बाद पुर्तगालियों का ताँता लग गया और उन्होंने भारत में कालीकट, कोचीन और कनानूर में अपनी कोठियाँ स्थापित कीं। इसके बाद फिर वास्को-डि-गामा १५०२ में सजधज के साथ आया और उस राजा जमोरिन पर आक्रमण कर दिया, जिसने उसे भारत में पैर टिकने का स्थान दिया था। योरोप में उस समय एक प्रथा थी कि जो जाति किसी नये स्थान का पता लगायेगी वहाँ उसका अधिकार समझा जायगा। पुर्तगाली सम्राट् ने भी भारत के साथ वैसा ही बर्ताव किया, जिसके लिये

उसे पोप से आज्ञापत्र भी मिल गया। पोप की आज्ञा पाते पुर्तगालियों का प्रथम वाइसराय फ्रांसिस्को आल्मीडा भारत आया। वह १५०५ से १५०९ तक भारत में रहा। उसकी यह नीति थी भारत के समुद्री तटों पर अधिकार जमाकर व्यापारिक शक्ति हा में लेना। यही कारण था कि उसने भारत के चिर परिचि अरब व्यापारियों पर आक्रमण कर उन्हें बुरी तरह पराजित कि और भारत का सारा समुद्री व्यापार अपने अधीन कर लिया। फ्रांसिस्को आर्लमीडा के बाद अल्बुकर्क वाइसराय होकर भारत आया। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने पूर्ववर्ती कर्मचारियों से कहीं अच्छा था। इसने आते ही अपने साम्राज्य की नींव सु करने के विचार से पुर्तगाली और भारतीय लोगों में विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की और उसे सफलता भी मिली। इसके बाद उसने अपनी कूटनीति से 'गोवा' पर विजय पाई और उसे राजधानी बनाकर शासन करने लगा। शिक्षा प्रसार के लिये उसने प्रशंसनीय कार्य किये। १५१५ ई० में उसकी गोवा में ही मृत्यु हुई और वहीं दफना दिया गया। इसके बाद पुर्तगालियों की साम्राज्य लिप्सा निरन्तर बढ़ती गई और अन्त में भारत के कई भागों पर उनका राज्य जम गया। परन्तु १०० वर्ष तक भी पुर्तगाली अपना राज्य पूरे भारत पर न कर पाये थे कि उनका पतन आरम्भ हो गया। अब उनके पास केवल गोवा, दामन, ड्यू के प्रदेश हैं जिनकी जन संख्या लगभग ६ लाख है। अंग्रेज और फ्रांसीसियों को देश से निकालने के बाद आजकल भारतीयों ने उधर ध्यान दिया है आशा की जाती है कि शीघ्र इन राक्षसों का हनन कर हम विजया दशमी बनायेंगे।

पुर्तगालियों के पतन के कारण—पुर्तगालियों का भारत में सर्व प्रथम आगमन हुआ और वे शासन जमाने में सफल भी हुए। किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनका साम्रा

इतना जल्दी कैसे केवल गोवा, दामन, ड्यू की चार दिवारी में ही सीमित हो गया। पुर्तगाली इतिहास का अध्ययन करने पर उनके साम्राज्य पतन के कारण ये दृष्टिगोचर होते हैं—

१—अत्याचार—पुर्तगाली अफसर बड़े अत्याचारी थे। आज के सालाजार की तरह प्रजा को दुःख देना ही उनका प्रधान कार्य था, २—अयोग्य उत्तराधिकारी—अल्बुकर्क के उत्तराधिकारी अयोग्य थे, जो शासन की 'ए०बी०सी०' भी न जानते थे, ३—धर्मान्धता—अपने धर्म के प्रचार के लिये उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कठोर व्यवहार किया, ४—सामुद्रिक डाकू—ये लोक डाका डालने में पर्याप्त सिद्धहस्त होते हैं, अतः उन्होंने उस समय भारतीय जहाजों को भी लूटा, ५—अन्तर्विवाह—भारतीयों के साथ विवाह सम्बन्ध बनाकर उनका उद्देश्य एक ऐसी जाति बनाने का था, जो खाये तो भारत का और गीत गाये पुर्तगाल का, जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली, ६—विरोधियों का आना—इन पुर्तगालियों की अपेक्षा अधिक सभ्य डच और अंग्रेज भारत में आ गये थे, जिनकी ओर झुकना भारतीयों का स्वभाविक था। ये ही कारण थे कि पुर्तगाल भारत में सफल नहीं हुए। आज भी पुर्तगालियों का वही रवैया है। उपरोक्त बातों से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि अब पुर्तगाली इस संसार में शासन करना तो दूर रहा, रहना भी नहीं चाहते।

डच—हालैण्ड देश के निवासी डच कहलाते हैं। भारत में पुर्तगालियों को मालोमाल होते देख इन बेचारों से भी न रहा गया और ये १६०२ में भारत में आ पहुँचे। भारतीय नरेशों ने इनके साथ भी सद् व्यवहार किया, और उन्हें स्वेच्छा पूर्वक व्यापारिक कोठियाँ खोलने दीं। चिन्सुरा, गोपट्टम, पुलीकट, सूरत, अहमदाबाद और पटना में उन्होंने अपने व्यापारिक मण्डल बनाये और भारत की धन राशि से हालैण्ड के कच्चे मकानों पर सोने और चान्दी की ईंटें डालने लगे। सामुद्रिक यात्रा में डच लोग बड़े निपुण होते हैं।

यही कारण था कि उन लोगों ने पुर्तगालियों को भारतीय समुद्रों से निकाल बाहर फेंका। इसके बाद डचों ने भी अँगुली पकड़ कर हाथ पकड़ने वाली उक्ति को चरितार्थ करने के लिये भारत में शासन जमाने की कोशिश की। किन्तु अंग्रेजों के सामने दाल न गलते देख शान्त हो गये और गरम मसाले के द्वीपों पर ही अधिकार करके रह गये। क्योंकि उस समय गर्म मसालों की बड़ी माँग थी। जावा सुमात्रा आदि द्वीपों पर शताब्दियों तक डचों ने शासन किया। किन्तु, अब ये द्वीप स्वतन्त्र हैं।

अंग्रेज—वैसे तो कुछ वर्ष पूर्व ही अंग्रेज भारत में आने जाने लगे थे, किन्तु उनका सम्बन्ध केवल निजी यात्रा से था। इधर १५८८ ई० में जैसे इंगलैण्ड ने स्पेन के व्यापारिक बेड़े को नष्ट-भ्रष्ट किया कि उनका साहस बढ़ गया। क्योंकि सामुद्रिक शक्ति अब उनके हाथ में आ गयी थी। इसलिये १६०० ई० में इंगलैण्ड के कुछ व्यापारियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की, जिसकी आज्ञा रानी एलिजाबेथ ने तुरत दे दी। इसके बाद यह कम्पनी भारत में आयी। किन्तु, आयी अपने हाथों में भारतीयों की परतन्त्रता का पाश लेकर। पहले तो इंगलैण्ड की इस कम्पनी ने गर्म मसाले वाले द्वीपों पर ही अधिकार करना चाहा, किन्तु डचों ने अंग्रेजों की एक न चलने दी। इस पराजय के बाद इस कम्पनी का यहाँ की पुर्तगाली व्यापारी मण्डली ने 'श्वानवत् घुर्घुरायते' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए उत्तर दिया। यही कारण था कि रानी एलिजाबेथ के प्रार्थना पत्र के साथ आये हुए अंग्रेज व्यापारियों को इन पुर्तगालियों ने अकबर के राज्य दरबार में टिकने नहीं दिया। इसके बाद १६०८ ई० में जहांगीर के दरबार में कप्तान हाकिन्स आया और उसे भारत में व्यापारिक कोठियाँ खोलने की आज्ञा भी मिली, किन्तु पुर्तगालियों के विरोध के बाद वह आज्ञा शीघ्र ही निषेध में बदल गयी। इसके बाद अंग्रेज अच्छी तरह समझ गये कि पहले इन सफेद चमड़ी वालों

अपने भाइयों को सीधा करना चाहिये। इसीलिये १६१२ ई० में अंग्रेजों ने सूरत के निकट सवाली स्थान के जल युद्ध में पुर्तगालियों को सबक सिखाया और उनकी शक्ति तहस-नहस कर दी। इसके बाद जहाँगीर के दरबार में अंग्रेजों को स्थान मिला। यही कारण था १६१५ ई० में सरटामसरो को इंगलैण्ड के सम्राट ने राजदूत बनाकर जहाँगीर के दरबार में भेजा और उसने कम्पनी को बहुत अधिकार दिलाये। इसके बाद १६४० में कम्पनी ने थोड़ी सी भूमि खरीद कर मद्रास में सेन्टजार्ज नामक दुर्ग की स्थापना की। १६५० में डाक्टर बाटन ने अपनी चतुरता से बंगाल के सूबेदार से लिखा लिया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी बिना कर दिये बंगाल में व्यापार कर सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि हुगली के किनारे कम्पनी की व्यापारिक कोठियाँ ही कोठियाँ नजर आने लगीं। १६६१ ई० में तो राजा चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को अपनी शासनप्रणाली का भी पूरा अधिकार दे दिया। अब कम्पनी अपना सिक्का और अपनी फौज रख सकती थी। १६६४ में चार्ल्स द्वितीय ने अपना किला जो उसे अपने ससुर पुर्तगाल के राजा की ओर से दिया गया था, उसे उसने बम्बई में किराये पर कम्पनी को दे दिया। धीरे-धीरे कम्पनी की शक्ति खूब बढ़ी और उसने हुगली नदी के किनारे कलकत्ता शहर की नींव डाली और वहाँ फोर्ट विलियम नामक राजा की स्मृति में किला बनवाया। इस प्रकार कम्पनी की उन्नति होते देख इंगलैण्ड से भारत का शोषण करने के लिये एक दूसरी कम्पनी भी आयी। कुछ दिन तक दोनों कम्पनियों में विरोध चला, किन्तु १७०८ ई० में ये आपस में मिल गयीं। इसके बाद इस संयुक्त कम्पनी ने भारत पर अधिकार कर लिया। इस कम्पनी ने इतने अत्याचार किये जिन्हें याद कर आज भी एक सच्चा मानव कम्पनी को धिक्कारे बिना नहीं रह सकता। अन्त में इन अत्याचारों का अन्त करने के लिये भारतीयों ने पहला स्वतन्त्रता युद्ध १८५७ ई० में छेड़ा, जिससे कम्पनी का अस्तित्व खतम हो

गया। उसके बाद ब्रिटेन की पार्लियामेन्ट का शासन रहा, जिस हटाने के लिये अनेक भारतीयों को बलिदान होना पड़ा। अन्त १४ अगस्त १९४७ ई० में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में हमने अंग्रे की गली-सड़ी सरकार को सात समुद्र पार फेंक दिया।

फ्रांसीसी—फ्रांसीसी भी अन्य योरोपीय जातियों की तर भारत में व्यापार करने की दृष्टि से आये। इसीलिये अंग्रेज ई इण्डिया कम्पनी की तरह फ्रांसवासियों ने भी अपनी एक व्यापारि कम्पनी स्थापित की। सन् १६६४ ई० में फ्रेञ्च ईस्ट इण्डिया कम्प की स्थापना होते ही मसोलीपटम, सूरत, पाण्डिचेरी और चन्द्रनग में फ्रेंच व्यापारिक कोठियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। धीरे-धीरे व्याप रिक उन्नति के बाद फ्रांसीसियों के हृदय में भारत पर शासन क की लालसा हो गयी। क्योंकि भारत पर विजय पाना, फ्रांस के रा की शक्ति को सुदृढ़ करना एवं ईसाई धर्म का प्रचार करना फ्रांसि के मुख्य उद्देश्य हो गये, जिसके लिये उन्हें स्वतन्त्र वातावरण आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने १६७४ ई० में पाण्डिचेरी अपनी राजधानी घोषित किया। इसके बाद कई स्थानों पर उन अधिकार हो गया। इस प्रकार भारत में शासन जमाने की मनोवृ देखकर अंग्रेज लोग फ्रांसीसी कम्पनी से चिढ़ गये। फलस्व दोनों कम्पनियों में संघर्ष होने लगा। किन्तु, फ्रेंच कम्पनी अंग्रे कम्पनी के समान न तो धनिक थी और न स्वतन्त्र। फ्रेंच कम्प फ्रेंच सरकार की थी इसलिये इस कम्पनी के अधिकारी राजा आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर पाते थे, जब कि अंग्रेज कम्प पूर्ण स्वतन्त्र थी। यही कारण था कि आगे चलकर फ्रेंच कम्पनी अंग्रेज कम्पनी के आगे दम तोड़ दिया। १७३५ ई० से १७४१ ई० डयूमा फ्रांस के विजित स्थानों का गवर्नर रहा और उसने फ्रांसी शक्ति की उन्नति करने के प्रशंसनीय कार्य भी किये। इसके बा ईस्ट-फ्रेंच कम्पनी की ओर से भारत विजित स्थानों का शा

युक्त किया गया। निःसन्देह वह बड़ा चतुर, दूरदर्शी, विचार शील एवं महत्त्वाकांक्षी था। जिस समय डुप्ले यहाँ गवर्नर होकर आया उस समय योरोप में प्रायः फ्रांस और इंगलैण्ड वालों के सम्बन्ध अच्छे न थे। छोटी-छोटी बात पर युद्ध छिड़ जाता था, जिसका असर भारत की कम्पनियों पर भी पड़ता था। डुप्ले के समय अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में परस्पर द्वेष के कारण युद्ध छिड़ गया, जिसमें अन्ततोगत्वा अंग्रेजों की विजय हुई। फ्रेंच कम्पनी के हारने के अनेक कारण थे।

(१) फ्रेंच सरकार ने डुप्ले की ठीक समय पर सहायता नहीं की, (२) फ्रेंच कम्पनी के कर्मचारी आपस में द्वेष करते थे और बड़े लालची हो गये थे, (३) डुप्ले को अब अभिमान हो गया था। (४) डुप्ले को अपनी विजय पर विश्वास था, इसीलिये उसने कभी इधर उधर से सहायता नहीं माँगी, (५) अंग्रेजों की जलशक्ति का फ्रांसीसी जलशक्ति की अपेक्षा अधिक होना।

यह सब होते हुए भी मानना पड़ता है कि डुप्ले एक बड़ा देशभक्त तीव्रबुद्धि, दृढ़ विचार वाला व्यक्ति था। उसने अपने देश और जाति की रक्षा एवं गौरव के लिये, अपना तन-मन-धन स्वाहा कर दिया। सचमुच यदि परिस्थितियाँ उसके अनुकूल रहतीं तो वह न हारता और न भारत में अंग्रेजी शासन को जमने देता। फ्रांसीसी शक्ति के इस प्रकार ह्रास होने पर भी माहे, कारीकल, पांडीचेरी, यनाओ और चन्द्रनगर पर फ्रांस की शासन व्यवस्था १९५४ ई० तक चलती रही। किन्तु, आज वहाँ फ्रांसीसी पताका के स्थान पर भारतीय तिरंगा फहरा रहा है।

भारतीयों से विदेशियों का संघर्ष

सिराजुद्दौला और प्लासी का युद्ध—औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसका कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं हुआ। फलतः बंगाल के सूबेदार मुर्शिदकुली खाँ ने मुगल साम्राज्य से पृथक् होकर अपनी राजधानी

मुर्शिदाबाद घोषित कर दी। मुर्शिदकुली खाँ की मृत्यु के बाद उसके वंशजों को पराजित कर अलीवर्दी खाँ ने १७४१ ई० में बंगाल का राज्यसिंहासन सम्भाला। यह बड़ा निपुण और कूटनीतिज्ञ था। इसके समय में जब कभी अंग्रेज किले आदि बनवाने की प्रार्थना करते तो यह तुरत उन्हें यह कहकर समझा देता था कि आप व्यापारी हैं, आप लोगों को किलों की क्या आवश्यकता है? इसकी मृत्यु के बाद उसका दोहता सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। यह एक अनुभव रहित नव युवक था। यही कारण था कि राज्य गद्दी पर बैठते ही उसकी अंग्रेजों से खटपट शुरू हो गयी, जिसका आगे चलकर भयंकर परिणाम हुआ। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों में प्लासी के मैदान में युद्ध हुआ, जिसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) १७५६ ई० में सिराजुद्दौला ने बंगाल का शासन हाथ में लेते ही अंग्रेजों को दुर्ग फोर्ट विलियम की मरम्मत कराने से रोका। किन्तु अंग्रेजों ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया। दूसरा राज्यद्रोही किशनदास धनाढ्य को अपने किले में स्थान भी दिया, जिससे सिराजुद्दौला को बड़ा क्रोध आया। तीसरा १७१७ ई० में जो व्यापारिक सुविधाएँ अंग्रेजों को दी गयी थीं, उनका दुरुपयोग भी होने लगा था। इन्हीं कारणों से चिढ़कर नवाब ने कलकत्ता पर चढ़ाई की और अंग्रेजों को मनमानी करने का पाठ पढ़ाया। कहा जाता है कि सिराजुद्दौला ने १४६ गोरों को एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिया और वे मर गये, (२) कलकत्ता की पराजय का समाचार पाते ही क्लाइव ने स्थल सेना के साथ और सेनापति वाटसन ने जलसेना के साथ कलकत्ता पर आक्रमण किया और सिराजुद्दौला को सन्धि करने के लिये बाध्य कर लिया। (३) सिराजुद्दौला के अल्हड़पन से लोग तंग आ गये थे। यही कारण था कि उसका प्रधान सेनापति मीरजाफर अब लोकप्रिय हो गया और लोग उसे नवाब बनाना चाहते थे। इसमें अंग्रेजों का भी बहुत बड़ा सहयोग था। जब यह सिरा

जुद्दौला को मालूम हुआ तो उसने अपनी सैनिक तैयारी की, इधर क्लाइव भी ३० हजार सैनिकों के साथ १७५७ ई० में प्लासी के मैदान आ गया। अंग्रेज सैनिकों ने अचानक आक्रमण कर दिया, थोड़े संघर्ष के बाद नवाब पकड़ा गया और अपने सेनापति मीरजाफर के लड़के मीरन के हाथ से मारा गया। इसके बाद मीरजाफर बंगाल का नवाब बना।

मीरजाफर और मीरकासिम—मीरजाफर बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां का बहनोई था और सिराजुद्दौला की सेना का प्रधान सेनापति भी था। १७५७ ई० में बंगाल का शासन यह करने लगा, किन्तु क्लाइव की कठपुतली बनकर। मीरजाफर यह नहीं चाहता था कि वह क्लाइव का सदा गुलाम बनकर रहे, इसीलिये उसने डचों से गुप्त मन्त्रणा की, किन्तु सफल न हो सका। इसके बाद मीरजाफर को १७६१ ई० में राज्य सिंहासन से उतार दिया गया और उसके स्थान पर उसका दामाद मीरकासिम गद्दी पर बैठा। यह बड़ा योग्य शासक था, किन्तु इसे भी अंग्रेजों ने चैन नहीं लेने दिया। बिना एक पैसा कर दिये अंग्रेज कम्पनी व्यापार करने लगी और भारतीय व्यापारियों से भी मनमाना पैसा लेकर उन्हें परवाने लिखकर देने लगी। इससे नवाब की आय प्रायः समाप्त हो गयी। यह व्यवहार देखकर मीरकासिम ने निश्चय किया कि विदेशी शासन को समाप्त किया जाय। अंग्रेजों को इस बात का ज्ञान होते ही मीरकासिम गद्दी से उतार दिया गया और दोबारा मीरजाफर को नवाब बना दिया। इधर मीरकासिम ने अवध के नवाब से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया, किन्तु बक्सर के मैदान में हार कर न जाने कहाँ भाग गया।

बंगाल का शासन छिन जाने पर और अंग्रेजों से पराजित होने पर मीरकासिम ने अवध नरेश शुजाउद्दौला और शाह आलम के साथ मिलकर बंगाल पर चढ़ाई की। किन्तु बुरी तरह परास्त हुआ। यह

प्लासी के बाद दूसरा युद्ध था, जिसने भारत में अंग्रेजों के साम्राज्य सुदृढ़ करने में सहयोग दिया। १७६५ ई० में क्लाइव ने शाह आलम और शुजाउद्दौला के साथ मित्रता बनाये रखने के ख्याल से इलाहाबाद में सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार शाह आलम ने बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को समर्पित कर दी। इसी प्रकार बढ़ते बढ़ते पहले उत्तरी भारत पर और फिर पूरे भारत पर अंग्रेजी शासन चलने लगा।

अवध और रुहेल खण्ड का संघर्ष—रुहेला जाति अफगानिस्तान से आकर यहाँ बस गयी थी। अवध के उत्तर पश्चिमी भाग में यह जाति अपना अधिकार रखती थी, जिसे हम रुहेल खण्ड के नाम से जानते हैं। इस जाति के लोग बड़े वीर, साहसी और परिश्रमी थे, किन्तु मराठे लोग इन्हें प्रायः लूट खसोट लेते थे। अपनी सारी योजनाओं का प्रयोग करने के बाद भी ये लोग मराठों को न रोक सके। अन्ततोगत्वा इन्होंने अवध के नवाब से मराठों को पराजित करने के लिये सैनिक सहायता माँगी, जिसे अवध के नवाब ने देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इस सैनिक सहायता के बदले नवाब को ४० लाख रुपया देने की रुहेलों ने प्रतिज्ञा की। मराठों ने १७७३ ई० रुहेलों पर आक्रमण किया, परन्तु अवध नवाब की शक्ति को देखकर समय की गतिविधि के मर्मज्ञ मराठे पीछे हट गये और पुनः आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। इसके बाद अवध नवाब शुजाउद्दौला ने रुहेलों से ४० लाख रुपया माँगा, किन्तु उन्होंने देने में असमर्थता प्रकट की। इसका बदला लेने के लिये नवाब ने वारेन हेस्टिंग्ज से सहायता माँगी, जो उस समय बंगाल का गवर्नर था। वारेन हेस्टिंग्ज ने सहायता देना स्वीकार कर लिया, जिसके बदले में सैनिक व्यय और ४० लाख रुपया नकद देने के लिये अवध नवाब ने कहा। लालची वारेन हेस्टिंग्ज ने तुरत एक सेना की टुकड़ी भेजी और रुहेलखण्ड

र विजय प्राप्त की और वहाँ के सरदार हाथिड़ा रहमत खाँ
ार दिया गया। इसके बाद रुहेलखण्ड अवध में मिला लिया
या। रुहेलों के विरुद्ध अवध में नवाब की सहायता करना वारेन
हेस्टिंग्ज का घोर अन्याय था, क्योंकि आज तक ईस्टइण्डिया कम्पनी
की रुहेलों ने कभी हानि नहीं पहुँचायी थी। रुहेलखण्ड का अवध
में विलीन होना अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सुरक्षा के लिये बड़ा
ाभप्रद सिद्ध हुआ।

नन्दकुमार—राजा नन्दकुमार एक उच्चवंशीय बंगाली ब्राह्मण
ा और किसी कारण गवर्नर जनरल से शत्रुता रखता था। १७७५
में उसने हेस्टिंग्ज पर यह दोष लगाया कि उसने मीर जाफर की
विधवा (मुनीबेगम) से साढ़े तीन लाख रुपया घूस ली है। जब
कौंसिल ने हेस्टिंग्ज से इस सम्बन्ध में पूछताछ की तो उसने उत्तर
देने से इन्कार कर दिया और नन्दकुमार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने
का अभियोग चला दिया। परन्तु अभी इस अभियोग का निर्णय
नहीं हुआ था कि कलकत्ते के एक सेठ मोहन प्रसाद ने नन्दकुमार के
विरुद्ध जालसाजी का मुकदमा चला दिया और उसे सुप्रीम कोर्ट
से प्राणदण्ड मिला।

नन्दकुमार को प्राण-दण्ड दिये जाने के पश्चात् कई व्यक्तियों ने
यह दोष लगाया कि चूंकि चीफ जस्टिस इम्पे और वारन हेस्टिंग्ज
पुराने सहपाठी थे, इसलिए चीफ जस्टिस ने वारन हेस्टिंग्ज का
पक्षपात करते हुए नन्दकुमार को प्राण-दण्ड दिया है। यह बात
झूठी प्रतीत होती है, किन्तु झूठ हो या सच, इसका एक प्रभाव यह
हुआ कि लोग वारन हेस्टिंज से डरने लगे और किसी को इतना
साहस न हुआ कि वारन हेस्टिंग्ज पर कोई दोष लगाये।

मराठों का प्रथम युद्ध—सन् १७७२ ई० में नारायण राव
मराठों का (पाँचवाँ) पेशवा बना, परन्तु उसके चाचा रघोबा ने

जो पेशवा बनने का उत्कट अभिलाषी था उसका वध करा दिया और स्वयं पेशवा बनने का प्रयत्न करने लगा। नाना फर्नवीस ने जो एक प्रभावशाली मराठा सरदार था, उसका विरोध किया और नारायण राव के पुत्र माधव राव नारायण को, जिसका जन्म अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् हुआ था, पेशवा के सिंहासन पर बिठाकर स्वयं उसका संरक्षक बन गया और बहुत से मराठा सरदार नाना फर्नवीस के साथ मिल गये।

इस प्रकार असफल होने के पश्चात् राघोबा ने बम्बई की अँगरेजी सरकार से सहायता माँगी, और सूरत में सन्धि का निश्चित हुआ, जिसमें निर्णय हुआ कि राघोबा इस सहायता के बदले में सालसट और बसीन के प्रदेश अँगरेजों को दे देगा। इस सन्धि के तुरन्त पश्चात् अँगरेजों ने सालसट पर अधिकार कर लिया, परन्तु बंगाल की सरकार ने इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह उनकी स्वीकृति के बिना निर्धारित किया गया था और उन्होंने नाना फर्नवीस के साथ सन् १७७६ ई० में पुरन्दर के स्थान पर एक नई सन्धि कर ली, जिसमें निश्चय हुआ कि यदि सालसट द्वीप अँगरेजों के पास रहने दिया जाये तो वे राघोबा की सहायता नहीं करेंगे, परन्तु इतने में सूरत में किये गये समझौते के सम्बन्ध में इंगलैंड से डाइरेक्टरों की स्वीकृति मिल गई, इसलिए अँगरेजी सरकार को राघोबा का ही साथ देना पड़ा।

घटनायें—अँगरेजी सेना का एक दस्ता राघोबा की सहायता के लिये बम्बई से पूना की ओर चल पड़ा, किन्तु उसे मार्ग में पूर्ण पराजय हुई और अङ्गरेज अधिकारियों को वरगाँव के स्थान पर एक अपमानसूचक समझौता करना पड़ा। परन्तु डायरेक्टरों ने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और युद्ध यथापूर्व होता रहा। जनरल गोडार्ड ने अहमदाबाद जीत लिया और मेजर पोफम ने ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

अब वारन हेस्टिंग्ज युद्ध को समाप्त करना चाहता था, क्योंकि एक तो व्यय अधिक बढ़ रहा था और दूसरे दक्षिण में हैदर अली का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इसलिये सन् १७८२ ई० में साल्बाई के सन्धिपत्र द्वारा यह युद्ध बन्द हो गया।

मैसूर का प्रथम युद्ध—१७६९ ई० में अंगरेजों ने मैसूर के सुल्तान हैदरअली से प्रतिज्ञा की थी कि यदि किसी शत्रु ने उस पर आक्रमण किया तो वे उसकी सहायता करेंगे, किन्तु उस प्रतिज्ञा के कुछ समय पश्चात् जब मराठों ने उस पर आक्रमण किया तो अंगरेजों ने उसकी सहायता न की। इससे हैदरअली अत्यन्त रुष्ट था।

२. अमेरिका के स्वतन्त्रता के युद्ध में जो इंगलैंड और अमेरिका के बस्तिवासियों के मध्य युद्ध हुआ, फ्राँस (१७७८ ई०) इंगलैंड के विरोधीपक्ष में सम्मिलित हो गया। इस पर अँगरेजों ने भारत में फ्राँसीसियों के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। उनमें बन्दरगाह माहे भी थी, जिससे हैदर अली को बहुत लाभ था। इसलिये उसने अङ्गरेजों से माहे को खाली कर देने को कहा, परन्तु अंगरेजों ने उसकी परवाह न की। इस पर हैदरअली ने युद्ध छेड़ दिया।

घटनायें—हैदरअली ने एक विशाल सेना के साथ कर्नाटक पर आक्रमण किया और सारे प्रदेश को तहस-नहस कर डाला। अङ्गरेज कर्नल बेली की पराजय हुई और बक्सर विजेता मेजर मनरो भी अपनी तोपें कांजीवरम् के एक तालाब में फेंककर स्वयं मद्रास भाग गया। इसके पश्चात् सर आयर कूट हैदरअली के विरुद्ध बढ़ा और उसने पोर्टोनोवो, पोलीलूर और सोलनगढ़ के स्थानों पर हैदरअली को हराया। उस समय फ्रांस से एक सहायक सेना आ पहुँची, जिससे हैदरअली का साहस बढ़ गया, किन्तु अभी युद्ध हो रहा था कि १७८२ ई० में हैदरअली की मृत्यु हो गई।

हैदरअली की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने चालू रखा तथा कई एक प्रदेश भी जीते। अन्त में १७८४ ई० मंगलोर के सन्धिपत्र द्वारा दोनों पक्षों में सन्धि हो गई।

चेतसिंह से झगड़ा—चेतसिंह कम्पनी के अधीन बनारस राजा था। वह प्रति वर्ष साढ़े बाईस लाख रुपया कम्पनी को देता था। हेस्टिंग्ज ने उससे १७७८ ई० में युद्ध के व्यय के लिए लाख रुपया वार्षिक और माँगा। चेतसिंह ने दो वर्ष तो यह रुपया दिया, किन्तु फिर टालमटोल की। इस पर हेस्टिंग्ज ने राजा पचास लाख रुपया दण्ड लगा दिया और उसे उगाहने स्वयं बनारस पहुँचा और राजा को बन्दी बना लिया। इस घटना से प्रजा वाले हेस्टिंग्ज के विरुद्ध भड़क उठी और वारन हेस्टिंग्ज को प्राण बचा कर चुनार भाग जाना पड़ा। राजा चेतसिंह भी अङ्गरेजों की से भाग निकला। इस झगड़े से कम्पनी को कोई विशेष रुपया हाथ न लगा, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि चेतसिंह से राज्य छीन कर उसके भांजे को राजा बना दिया और कर की राशि बढ़ा कर चालीस लाख रुपया वार्षिक कर दी गई।

अवध की बेगमों की घटना—जब बनारस से कोई धनराशि हाथ न लगी तो हेस्टिंग्ज ने दूसरा उपाय सोचा। अवध के नवाब आसफुद्दौला से अंग्रेजों को बहुत सा रुपया लेना था, क्योंकि उसने पिछले कई वर्षों से अपने प्रान्त में स्थित अङ्गरेजी सेना का व्यय नहीं चुकाया था। हेस्टिंग्ज ने उससे रुपया माँगा, किन्तु उसने उत्तर दिया कि मेरे पास रुपया नहीं है, क्योंकि मेरी माता और दादी ने सारा रुपया अपने अधिकार में कर लिया है। यदि आप बेगमों से रुपया प्राप्त करने में मेरी सहायता करें तो मैं अपना सारा ऋण चुकता कर दूँगा। हेस्टिंग्ज का विचार था कि बेगमों ने चेतसिंह के विद्रोह में उसकी सहायता की थी। अतएव उसने इस काम में नवाब की सहायता की और बेगमों को तंग करके ७६ लाख रुपया प्राप्त कर लिया।

हेस्टिंग्ज के उपरिलिखित दोनों कार्य अनुचित थे। उसने
था चेतसिंह पर अत्याचार किया, इसलिए जब वह इंगलैंड लौटा
ो उस पर इन तथा इसके अतिरिक्त कई एक अन्य दोषों उदाहरणा-
यां घूसखोरी और रुहेलों के युद्ध में अवध के नवाब की सहायता
रने आदि के आधार पर मुकदमा चलाया गया, जो लगभग सात
र्ष चलता रहा। इसमें उसका सारा उपार्जित धन व्यय हो गया,
न्तु अन्त में वह दोषमुक्त कर दिया गया और कम्पनी ने उसकी
त्ति नियत कर दी।

अभ्यास

[क] पुर्तगालियों की साम्राज्य लिप्सा का परिचय देकर उनके पतन
कारणों पर प्रकाश डालिये।

[ख] डच, अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बारे में आप क्या जानते हैं?
क्षिप्त उत्तर दो।

[ग] सिराजुद्दौला, मीरजाफर और मीर कासिम परे पृथक्-पृथक्
ोट लिखो।

[घ] अवध और रुहेल खण्ड के संघर्ष के बारे में आप क्या जानते हैं?
स्पष्ट उत्तर दो।

[ङ] वारनहेस्टिंग्ज के भारतीय कार्यों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालकर
चित अनुचित की सप्रमाण पुष्टि कीजिये।

—०—

षोडश खंड

हैदरअली, टीपुसुल्तान, रणजीत सिंह, पेश

हैदरअली—हैदरअली अठाहरवीं शताब्दी के उन शूर वीरों
प्रमुख स्थान रखते हैं, जिन्होंने अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया थ
इसका नाम सुनते ही अंग्रेजों की सेना में खलबली मच जाती थी
इस असाधारण शूरवीर का जन्म १७२२ ई० में हुआ। हैदर अ
का पिता एक साधारण फकीर था। अतः हैदरअली की प्रारम्भि
शिक्षा का अच्छा प्रवन्ध न हो सका। किन्तु उसने स्वयं श्रीरंगप
में रहकर चिरकाल तक शस्त्र-अस्त्रों का प्रयोग, घुड़सवारी औ
राजनीति की चालों का अच्छा अभ्यास किया। फलस्वरूप मैसू
राज्य की सेना में साधारण सिपाही रहा। किन्तु होनहार अली
अपनी योग्यता का वहाँ रहकर खूब परिचय दिया, जिससे प्रस
होकर वहाँ के राजा ने १७५५ में उसे सेनापति घोषित कर दिया
सेनापति के कार्यकाल में अली ने मैसूर-राज्य से शत्रुता र
वालों का खूब दमन किया। यही कारण था कि वहाँ की हिं
जनता भी उसे तन-मन धन से मानती थी। १७६६ ई० में मैसू
के राजा की अचानक मृत्यु हो जाने पर हैदर अली ने स्वयं राज्य
सिंहासन पर पदार्पण किया और अपने को सुल्तान घोषि
कर दिया।

हैदरअली और मैसूर का पहला और दूसरा युद्ध—हैदरअ
को राज्यसिंहासन पर बैठते ही कई कठिनाइयों का सामना कर
पड़ा। क्योंकि उसकी इस प्रकार साधारण सैनिक से सुल्ता
बनने की उन्नति प्रायः अंग्रेज, मराठा और निजाम के लिये सि

दें बन गयी। हैदरअली ने अपनी चतुरता से निजाम और मराठों को किसी प्रकार कुछ ले देकर प्रसन्न कर लिया, जिसका फल यह हुआ कि निजाम और हैदर अली की संयुक्त सेना ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया। किन्तु अंग्रेज कर्नल स्मिथ द्वारा १७६७ ई० में ट्रिनोवली और चंगामा के स्थान पर यह संयुक्त सेना बुरी तरह पराजित की गई। इस पराजय ने निजाम को भीरु बना दिया और वह अंग्रेजों की शरण में आ गया। किन्तु वीर हैदर अली ने अपनी अनुपम रणचातुरी से कर्नाटक आदि राज्यों का दमन किया और मद्रास जा पहुँचा। मद्रास की सरकार भी तो इस वीर से युद्ध करने से पहले ही भयभीत हो गयी और उससे सन्धि कर ली। इस प्रकार अंग्रेजों ने हैदर अली से प्रतिज्ञा की कि हम लोग आपस में एक दूसरे से कभी नहीं लड़ेंगे, अपितु आवश्यकता पड़ने पर सहायता करेंगे। किन्तु १७७१ ई० में मराठों ने हैदर अली के राज्य मैसूर पर चढ़ाई की। अंग्रेजों से सहायता माँगने पर हैदर अली को सिवा कोरा जवाब मिलने के और कुछ न मिला। यही कारण था कि बाद में हैदर अली सन्धि भंग करनेवाली अंग्रेज जाति के कट्टर शत्रु बन गया।

राज्य प्रबन्ध—हैदरअली की राज्य-प्रबन्ध प्रणाली बड़ी उत्तम कही जा सकती है, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव का नाम तक न जानता था। सरकारी कार्यालयों में केवल वे ही व्यक्ति जा पाते थे जो योग्य और चरित्रवान होते थे। राज्य के प्रत्येक विभाग का दिग्दर्शन करना हैदरअली अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता था। अनुशासन पालन पर उसका विशेष ध्यान रहता था। वह स्वयं कभी खाली बैठना पसन्द न करता था और अपने कर्मचारियों को भी वैसा ही करने की आज्ञा देता था। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध दो युद्ध लड़े। दूसरे में उसकी मृत्यु १७८२ ई० में हो गयी। इसमें सन्देह नहीं कि हैदर अली एक योग्य शासक एवं चतुर सेनापति

था। अनपढ़ होते हुए भी वह बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी, क्योंकि वह बड़े बड़े लेख एक ही बार सुनकर याद रख सकता था। अनेक भाषाओं में वह बोल सकता था। मनुष्य परखने में उसकी शक्ति वस्तुतः प्रशंसनीय थी। निर्धनों की सेवा और सहायता करना उसके जीवन का मुख्य ध्येय था।

टीपु सुल्तान और युद्ध—टीपु सुल्तान लगभग ३० वर्ष की आयु में अपने पिता हैदर अली की मृत्यु के बाद मैसूर राज्य की गद्दी पर बैठा। इसमें सन्देह नहीं टीपु बड़ा वीर और साहसी था किन्तु उसमें अपने पूर्वज जैसी दूरदर्शिता का पूर्णरूप से अभाव था। यही कारण था कि उसने मराठों के साथ शीघ्र ही सम्बन्ध बिगाड़ लिया। महत्त्वाकांक्षी टीपु सुल्तान ने १७८९ ई० में ट्रावनकोर के हिन्दू राजा पर आक्रमण किया, जो अंग्रेजों के संरक्षण में था, इस आक्रमण का समाचार पाते ही उस समय के अङ्गरेज गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस ने निजाम और मराठों के सहयोग से टीपु के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पहले तो टीपु ने अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया। यह देखकर लार्ड कार्नवालिस ने सेना सञ्चालन अपने हाथ में लिया और बंगलौर को अपने अधीन कर टीपु को अरीकेरा के स्थान पर पराजित कर दिया। किन्तु परिस्थिति वश अङ्गरेजों की सेना को पीछे हटना पड़ा। यह देख टीपु सुल्तान ने फिर अपनी विजय की चेष्टाएँ आरम्भ कर दीं। फलस्वरूप १७९२ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने श्रीरंगपट्टम के स्थान पर टीपु को घेर लिया। अपनी विजय के लक्षण न देखकर टीपु ने सन्धि करना ही उचित समझा। इस सन्धि-पत्र द्वारा टीपु ने अपना आधा राज्य और तीन करोड़ रुपया देने की प्रतिज्ञा की। सन्धि के अनुसार पाया हुआ आधा राज्य अंग्रेज, निजाम और मराठों ने आपस में बाँट लिया।

अङ्गरेजों के साथ सन्धि करके भी टीपुसुल्तान प्रसन्न न था, क्योंकि वह यह कभी न चाहता था कि मेरे राज्य के आधे भाग पर और लोग शासन करें। यही कारण था कि उसने १७९८ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वैलजली के शासनकाल में फ्रांसीसियों से मेल कर लिया और अंग्रेजों को देश से निकालने की योजनायें बनाने लगा। इधर जब गवर्नर जनरल लार्ड वैलजली ने अपनी नीति के अनुसार सबसिडियरी सिस्टम अपनाने को टीपू से पूछा तो उसने अपमान सूचक उत्तर दिया। क्योंकि सबसिडियरी सिस्टम के अनुसार भारत का कोई भी राजा अङ्गरेजों की आज्ञा बिना न तो किसी अन्य राज्य से युद्ध कर सकता था और न तो सन्धि। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिये अङ्गरेजों ने टीपु सुल्तान पर तीन ओर से आक्रमण कर दिया। सेना के पहले विभाग का नेतृत्व मद्रास के जनरल हैरिस की देख-रेख में था, दूसरे विभाग का संचालन बम्बई के जनरल स्टुअर्ट कर रहे थे, तीसरा विभाग जो निजाम की सेना का था, उसके सेनापति स्वयं गवर्नर जनरल वैलजली के छोटे भाई आर्थर वैलजली कर रहे थे। इन सेनाओं का कुछ समय तक तो टीपु ने डटकर सामना किया, किन्तु अन्त में हारकर उसने अपने दुर्ग श्रीरङ्गपट्टम का आश्रय लिया और वहाँ मारा गया। इससे अंग्रेजों को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उनका हैदर अली के बाद यह दूसरा कट्टर शत्रु था, जो मारा गया था। इसके बाद मैसूर की रियासत पर अङ्गरेज शासन चलने लगा।

टीपु सुल्तान का चरित्र—टीपु सुल्तान में अपने पिता हैदरअली के प्रायः राज्य प्रबन्ध आदि गुण थे। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का आदर करता था। नशीले पदार्थों से उसे बड़ी घृणा थी। भेद भाव किस चिड़िया का नाम है उसे ज्ञात तक न था। उसके राज्य की अधिकांश जनता हिन्दू थी, जो उससे पूर्ण रूप से

सन्तुष्ट थी। क्योंकि वह अपने राज्य के प्रसिद्ध मन्दिरों की रक्षा का सदैव उचित प्रबन्ध करता था और उन्हें राज्य कोष से मासिक सहायता भी देता था। स्वतन्त्र जीवन यापन करना उसके जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य था। यही कारण था कि उसने अंग्रेजों से बार बार टक्कर ली। अन्त में अपने पिता का राज्य सदैव के लिये खोकर भी आज इतिहास में टीपु सुल्तान आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसीसे उसकी महानता नापी जा सकती है।

राजा रणजीतसिंह—राजा रणजीत सिंह के नाम के साथ-साथ सिक्ख साम्राज्य की कहानी भी जुटी हुई है। क्योंकि इसी महान विभूति ने सिक्ख साम्राज्य की नींव डाली थी। रणजीत सिंह का जन्म १७८० ई० में गुजरांवाला (आज कल यह स्थान पाकिस्तान में पड़ता है) में हुआ थ। उनके पिताजी सुखरचकया मिसल के नेता महा सिंह थे। रणजीत सिंह की बांई आँख चेचक के कारण बचपन में जाती रही। अभी उनकी आयु १२ वर्ष की भी न थी कि रणजीत सिंह के पिता ने स्वर्गारोहण किया। इसके बाद वे मिसल के सरदार बनाये गये। १६ वर्ष की आयु में कन्हैयालाल मिसल में उनकी शादी हो गई। इस प्रकार दो मिसलों के मिलने पर राजा रणजीत सिंह की शक्ति सुदृढ़ हो गयी।

शक्ति हाथ में आ जाने पर राजा रणजीत सिंह ने अपनी राज्य सीमा बढ़ाने का प्रयास किया। १७९८ ई० में पंजाब के कई भागों पर अफ़गानिस्तान के अहमद-शाह अब्दाली के पोते जमान शाह ने अधिकार जमा लिया था। किन्तु जमान शाह को शीघ्र ही अपने देश को लौटना पड़ा, क्योंकि वहाँ विद्रोह हो गया था। इस शीघ्रता के कारण उसकी कई तोपें झेलम नदी के किनारे रह गईं, जिन्हें राजा रणजीत ने उसके पास सुरक्षित पहुँचा दिया। इस ईमानदारी पर प्रसन्न होकर शाह ने लाहौर रणजीत सिंह को दे दिया। लाहौर का राज्य हाथ में आते ही राजा रणजीत सिंह ने सतलज नदी तक

सारे मध्य पञ्जाब पर अधिकार कर लिया। इसके बाद सतलज पार कर अन्य रियासतों पर भी अधिकार करना चाहा, किन्तु लार्ड मिन्टो के प्रतिनिधि चार्ल्स मैटकाफ ने अमृतसर में आकर संन्धि कर ली। इस सन्धि के आधार पर सतलज नदी रणजीत सिंह के राज्य की सीमा समझी गई और सतलज नदी की दूसरी ओर की रियासतें अंग्रेजों के अधीन रहीं। उस प्रतिज्ञा का पालन राजा रणजीत सिंह ने मरते दम तक किया। इस सन्धि के अनुसार राजा रणजीत सिंह ने अपने राज्य की सीमा पूर्व की ओर न बढ़ाकर उत्तर पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी प्रान्तों को जीतकर बढ़ाई। सिक्ख साम्राज्य की सुदृढ़ नींव डालने के लिये अटक, मुल्तान, काश्मीर, हजारा, बन्नू, डेराजात एवं पेशावर आदि प्रान्त राजा रणजीत सिंह ने जीते और अन्त में १८३९ ई० में वे मर गये।

राज्य प्रबन्ध—अपने राज्य को सुचारु ढंग से चलाने के लिये राजा रणजीत सिंह ने चार प्रान्त घोषित किये, लाहौर, काश्मीर, मुल्तान और पेशावर। प्रान्तों को जिलों में बाँटा गया। प्रत्येक जिले का स्वामी कारदार कहलाता था, जिसपर वहाँ की पूर्ण शान्ति रखने की पूरी जिम्मेदारी थी। न्याय बड़ा ही सरल और सस्ता था। आज की तरह धनराशि व्यय करने की आवश्यकता न पड़ती थी। बड़े-बड़े अपराधों के लिये ही केवल कठोर दण्ड दिया जाता था। गाँव की पंचायतें अपना स्वयं निर्णय करती थीं, किन्तु अन्तिम अपील महाराजा के पास होती थी। साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का न्यायादि में प्रयोग बिलकुल न होता था। आय के साधन के लिये कृषिकर था, जो $\frac{1}{3}$ या समय पड़ने पर $\frac{1}{2}$ भी लिया जाता था। सेना सम्बन्धी प्रबन्ध राजा रणजीत सिंह का अत्युत्तम था। सैनिकों को योरोपीयन ढंग से शिक्षा दी जाती थी। सेना के पास ५०० उच्च कोटि की तोपें भी थीं। राजा को घुड़सवारी का बड़ा शौक था। कुल सेना लगभग ८००० थी। सैनिक सरदारों में हरिसिंह

नलुवा का स्थान सर्वोत्कृष्ट था, क्योंकि उसने अनेक बार पठानों को हराया और उनको अपने राज्य में मिलाया था। अन्त में हरि सिंह नलुवा पठानों से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार राजा रणजीत सिंह का राज्य प्रबन्ध योग्य कर्मचारियों द्वारा होता था।

रणजीत सिंह का चरित्र और उनके उत्तराधिकारी—राजा रणजीतसिंह बड़े साहसी और कर्मठ व्यक्ति थे। यही कारण था कि आगे चल कर उन्हें 'शेरे-पञ्जाब' और अर्थात् 'पञ्जाब केसरी' की उपाधि मिली। शासन की योग्यता उन्हें जन्म जात गुण के रूप में मिली थी। अनपढ़ होने पर भी वे अपने तर्कों के सामने बड़े-बड़े विद्वानों को बोलने न देते थे। विद्वानों और शूर वीरों का सम्मान करना वे पहला कर्त्तव्य समझते थे। किसी के मत के प्रति वे घृणा भाव न रखते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि राजा प्रजा की सेवा करने के लिये हैं। सेना का प्रत्येक व्यक्ति उनसे प्रेम और श्रद्धा का वर्ताव करता था, क्योंकि प्रत्येक सैनिक की आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य कोष से होती थी। कर्मपरायणता, सत्यवादिता आदि गुणों के वे धनिक थे। आगे चलकर इन्हीं गुणों के कारण वे खालसा साम्राज्य की नींव डाल सके। यह सत्य है कि उनमें शारीरिक शक्ति के साथ-साथ ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा भी थी। क्योंकि इतिहास साक्षी है कि १८३९ ई० में महाराजा रणजीत सिंह के मरते ही खालसा साम्राज्य में अशान्ति फैल गई। अब खालसा साम्राज्य को चिर स्थायी रखने की प्रतिभा किसी में न थी। फल यह हुआ कि सैनिकों को समय पर वेतन न मिलने के कारण उन्होंने सर्वत्र लूट खसोट प्रारम्भ कर दी। थोड़े ही वर्षों में कई राजकुमारों और कर्मचारियों को जान से हाथ धोना पड़ा। अन्त में १८४३ ई० में महाराजा रणजीत सिंह का छोटा लड़का दिलीप सिंह गद्दी पर बैठाया गया। दिलीप सिंह के संरक्षण का कार्य उसकी माता जिन्दाबाई के हाथ में

था। किन्तु अब सिक्ख सरदारों का खालसा राज्य में बिलकुल विश्वास न था। यही कारण था कि अङ्गरेजों को सिक्ख साम्राज्य पर आक्रमण करने का गुप्त रीति से निमन्त्रण दिया गया। परिणाम स्वरूप अङ्गरेजों के साथ सिक्खों का पहला युद्ध हुआ, जिसमें सिक्ख साम्राज्य की हार हुई, क्योंकि वहाँ प्रभावशाली व्यक्तियों का अभाव था। दोआबा, जालन्धर आदि प्रदेशों पर अङ्गरेजी शासन चलने लगा। सिक्खों की वैमनस्यता ने इतना जोर पकड़ लिया कि अङ्गरेजों ने अपने १८४८ ई० के द्वितीय युद्ध में सिक्ख साम्राज्य का पूर्ण रूप से खातमा कर दिया। इस प्रकार १८४९ ई० में पञ्जाब अङ्गरेजी साम्राज्य की एक कड़ी बन गया।

पेशवा—पेशवा वंश की उत्पत्ति महाराज शिवाजी के उन मन्त्रियों से हुई, जो शिवाजी के शासन कार्य में हाथ बँटाते थे। उस समय ८ मन्त्रियों का एक मन्त्रिमण्डल था, जिसने शिवाजी की मृत्यु के बाद शासन अपने हाथ में लिया। किन्तु अष्टप्रधानों में केवल पेशवा वंश ने ही अत्यधिक उन्नति की। यही कारण कि आज भारतीय इतिहास में उनका नाम आदर का विषय बना हुआ है। प्रमुख पेशवा ये हैं, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे—(१) बालाजी विश्वनाथ, (२) बाजीराव प्रथम, (३) बालाजी बाजीराव, (४) माधव राव, (५) नारायण राव (६) माधव नारायण राव, (७) बाजीराव द्वितीय।

बालाजी विश्वनाथ—पेशवा वंश का संचालक बालाजी विश्वनाथ था। इसने अपनी विलक्षण बुद्धि के प्रभाव से मराठा राज्य के जर्जर शरीर को पुनः सुन्दर रूप दिया और पेशवा का पद पैतृक बना दिया। बालाजी विश्वनाथ के शासन काल की सर्व प्रधान घटना सैय्यद भाइयों की सहायता करना था। सैय्यद भाइयों ने अपनी सहायता के लिये इस पेशवा वंश के संचालक को देहली बुलाया और इसकी सहायता पाकर वे फरुख सैय्यद को पद-

च्युत करने में पूर्ण सफल हुए। इस विजय के बदले सैय्यद भाइयों ने मराठों को दक्षिण के सूबों से कर आदि लेने की अनुमति दे दी। इस प्रकार पूरे दक्षिण पर मराठों का आधिपत्य हो गया। मराठों के संगठन का इस समय बड़ा प्रचार किया गया। यही कारण था कि राजा की आज्ञा थी कि कर का ¼ भाग तो राज्यकोष में जमा किया जाय और ¾ मराठा सरदार अपने पास रक्खें लें। इससे लोगों की आर्थिक दशा अच्छी होने लगी। किन्तु अन्त में यह कर प्रणाली पेशवा वंश के लिये घातक सिद्ध हुई। अन्त में १७२० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गयी।

बाजीराव प्रथम—बाजीराव प्रथम अपने पिता बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद पेशवा बनाया गया। अपनी योग्यता और साहस में बाजीराव प्रथम का स्थान बड़ा आदरणीय समझा जाता है। क्योंकि इसके पिताने तो केवल दक्षिण भारत में ही राज्य की सुदृढ़ता का प्रयत्न किया। किन्तु इसने उत्तरी भारत में भी प्रयत्न किया। बाजीराव की नीति सदा यह थी कि सर्व प्रथम दिल्ली का राज्य अपने हाथ में लेना। यही कारण था कि वह सदा शाहू को कहा करता था कि 'हमें पहले मुगलवंश के वृक्ष का मूल काट देना चाहिये। फिर शाखाएँ और पत्ते तो स्वयं सूखकर समाप्त हो जायेंगे।' इसके नेतृत्व में मराठों ने गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया था। इसके बाद देहली को बढ़े। किन्तु निजामुलमुल्क ने इन्हें दक्षिण की ओर से आकर रोका, किन्तु मराठों की चमचमाती तलवारों ने उसे भूपाल के समीप ही पराजित कर दिया। यह बाजीराव प्रथम की ही योग्यता थी कि पुर्तगालियों के हाथ से मराठों ने बसीन टापू भी छीन लिया। इस प्रकार द्वितीय पेशवा के शासनकाल में मराठों की खूब उन्नति हुई।

बाजीराव के समय में ही कई मराठे जो कर आदि एकत्र करते थे वहाँ के स्वतन्त्र शासक बन बैठे—(१) राघोजी भोंसले

ने नागपुर में, (२) मल्हार राव होल्कर ने इन्दौर में, (३) राना जी सिन्धिया ने ग्वालियर में, (४) पिल्लाजी गायकवाड़ ने बड़ौदा में अपनी स्वतन्त्र रियासतें स्थापित कर लीं। पेशवा ने इन सबको मिलाकर एक सुदृढ़ दल बनाया, जिसका नाम मराठा दल रक्खा। पेशवा इस दल का मुखिया होता था।

(३) बालाजी बाजीराव—बालाजी बाजीराव ने अपने पिता बाजीराव प्रथम की मृत्यु के बाद १७४० में पेशवा पद को अलंकृत किया। सचमुच यह समय मराठों के लिये स्वर्ण युग था। क्योंकि इस काल में चारों ओर मराठों की सेना विजय पा रही थी। बालाजी बाजीराव की योजना का फल था कि राघोजी भोंसला ने मध्य भारत को पूर्णरूप से जीत लिया और बंगाल पर भी आक्रमण कर दिया। यह स्थिति देखकर बेचारे वहाँ के सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने उड़ीसा प्रान्त मराठों को सौंप दिया और बंगाल, बिहार से बारह लाख कर देना भी स्वीकार किया। इधर पेशवा के भाई राघोबा ने पञ्जाब पर पूर्ण अधिकार जमा लिया और वहाँ से अहमदशाह अब्दाली के प्रतिनिधि को निकाल दिया। इसके बाद मुगलिया सरकार ने भी मराठों को कुछ करके रूप में देना स्वीकार कर लिया। अब मराठों का गेरुआ झण्डा अटक आदि स्थानों पर बड़े गौरव से फहराता था। इसलिये वह सचमुच मराठों की उन्नति का युग था। किन्तु भाग्य सदैव साथ नहीं देता। ठीक उसी समय जब मराठा वंश खूब फल-फूल रहा था, अहमदशाह अब्दाली ने पानिपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को पराजित कर दिया। इस पराजय में मराठों की लापरवाही ही प्रधान रूप से कारण थी। इसी शोक में देशभक्त बालाजी बाजी-राव पेशवा ने १७६१ ई० में अपनी अन्तिम साँस ली। इसके बाद अहमद शाह अब्दाली मराठों की शक्ति को कम करके अपने देश लौट गया। किन्तु अंग्रेजों ने समय से लाभ उठाकर अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू कर दी।

(४) माधवराव—माधवराव जब पेशवा बनाया गया उस समय वह नाबालिग था। यही कारण था कि उनकी देखभाल उसके चाचा रघुनाथ राव (राघोबा) ने की। समय से लाभ उठाने के विचार से १७६२ ई० में हैदराबाद के शासक निज़ाम अली ने मराठों पर आक्रमण कर दिया, जिसमें उसे पराजित होना पड़ा। माधवराव बड़ा धैर्यवान् था, कई बार अपने चाचा राघोबा से भी झगड़ा हो जाने पर घबराता न था। निजाम अली के द्वितीय आक्रमण के समय मराठों में वैमनस्य चल रहा था। फिर भी उसे मुँह की खानी पड़ी। इस विजय ने पेशवा की कीर्ति को चार चान्द लगा दिये। इस विषय में नाना फड़नवीस और महादजी सिन्धिया का विशेष हाथ था। १७६९ ई० में उत्तरी भारत पर फिर से धाक जमाने के विचार से पेशवा ने रामचन्द्र गणेश महादजी सिन्धिया एवं तुकाजी होल्कर के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने बुन्देल खण्ड, मालवा आदि को अधीन किया। इसके बाद रुहेल और अफगानों को पराजित कर दिल्ली में पुनः गेरुवा झण्डा गाड़ दिया। इस प्रकार उत्तर भारत में मराठों की विजय दुन्दुभि बजने लगी। इधर १७७२ ई० में अचानक पेशवा की मृत्यु हो गयी और मराठों का फिर पतन आरम्भ हो गया।

नारायणराव—नारायणराव १७ वर्ष की अवस्था में अपने पिता माधवराव की मृत्यु के बाद पेशवा बना, किन्तु शीघ्र ही अपने चाचा राघोबा के षड़यन्त्र से मारा गया। इसके बाद नारायणराव का एक मात्र लड़का माधवराव ४० दिन का होने पर पेशवा बनाया गया। इसकी सहायता के लिये फड़नवीस, हरिपन्त, फड़के आदि द्वादश मराठों ने एक समिति बनायी, जो पेशवा की रक्षा का सदैव ख्याल रखती थी। इस प्रकार का संगठन देखकर राघोबा वहाँ से भाग गया। इसके बाद राघोबा ने अंग्रेजों से मिलकर मराठों को हानि पहुँचाने में कोई कसर नहीं की।

नाना फड़नवीस—नाना फड़नवीस माधवराव नारायण का एक माना हुआ वीर मन्त्री था, जिसने पुनः मराठा वंश की यश पताका फहरायी थी। एक बार नाना फड़नवीस ने हैदराबाद के निज़ाम को चौथ चुकाने के लिये आज्ञा दी। किन्तु चौथ देना, तो दूर रहा, उल्टा निज़ाम ने भरे दरबार में फड़नवीस का अपमान किया। इस अपमान का बदला १७९५ ई० में नाना ने लेने के लिये आक्रमण कर दिया, जिसमें मराठों ने पूर्ण विजय प्राप्त की और निज़ाम ने झुककर सन्धि की प्रार्थना की। सन्धि के बदले में दौलताबाद का किला और ३ करोड़ रुपया एवं युद्ध व्यय निजाम को देना पड़ा। इसके बाद पेशवा माधवराव की छत से गिरकर मृत्यु हो गयी। माधवराव की मृत्यु क्या थी, यह मराठा वंश में सम्मान पानेवाले पेशवावंश की मृत्यु थी। १७९६ ई० में अयोग्य राघोबा का अयोग्य पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा बना। इससे नाना फड़नवीस पूर्णरूप से असन्तुष्ट थे। इसलिये बाजीराव द्वितीय फड़नवीस को बन्दी कर लिया किन्तु राज्य की नाव डगमगाती देख पुनः पेशवा ने मन्त्री पद पर नाना फड़नवीस को १७९८ ई० में नियुक्त किया। मन्त्रीपद प्राप्त कर लेने पर भी अब फड़नवीस में वैसी कार्यकुशलता न थी, क्योंकि पेशवा बड़ा अयोग्य था। १८०० ई० में नाना फड़नवीस की अचानक मृत्यु हो गयी और मराठा वंश रसातल की ओर तीव्रगति से सरकने लगा। फड़नवीस बड़ा योग्य मन्त्री था। उसने अपने जीतेजी अंग्रेजों को कभी दरबार में पैर नहीं जमाने दिया, क्योंकि वह अंग्रेजों की मक्कारी का पक्का जानकार था। दया, सत्यवादिता, उदारता आदि गुणों की सचमुच वह खान था।

अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय—बाजीराव द्वितीय बड़ा भीरु और निरुत्साही पेशवा था। इसने अपने पूर्वजों का नाम डुबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। गद्दी पर बैठते ही इसने अंग्रेजों

की वसीन सन्धि स्वीकार कर ली, यद्यपि यह सन्धि बड़ी अपमा जनक थी, फिर भी पेशवा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। परतन्त्र हो जा पर भी पेशवा को अङ्गरेजों का हरेक कार्य में हस्तक्षेप अच्छा लगता था। यही कारण था कि अन्त में पेशवा को अंग्रेजों विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ा। बड़ौदा के गायकवाड़ का ऐसा माम था, जिसने १८१५ ई० में पेशवा बाजीराव और अंग्रेजों में वैर की खाई खोद दी थीं। पेशवा गायकवाड़ स्थान को अप राज्य का एक भाग मानता था, जब कि अंग्रेज १८०२ ई० की सन्धि के अनुसार अपने अधीन समझते थे। क्योंकि सन्धि की निम्न शर्तें पेशवा ने स्वीकार की थीं—(१) वह अंग्रेजों को सर्वो प्रभु मानेगा (२) अपने दरबार में एक रेजीडेंट रखेगा, (३ फ्रांसीसियों को दरबार में स्थान नहीं देगा, (४) एक सहायक सेन अपने पास रखेगा, जिसके व्यय के लिये वह प्रदेश अङ्गरेजों को समर्पि करेगा, जिनकी वार्षिक आय २६ लाख रुपया के लगभग होगी (५) अंग्रेजों की आज्ञा के विना किसी से युद्ध या सन्धि करेगा, (६) गायकवाड़ और निजाम के साथ जो झगड़े हैं, उन अंग्रेजों द्वारा दिये गये निर्णय स्वीकार करेगा। इन्हीं शर्तों बल पर ही बाजीराव द्वितीय पेशवा बना था, जो सारी मरा जाति की स्वतन्त्रता पर प्रत्यक्ष रूप से कुठाराघात था। अब पेशवा को गायकवाड़ के मामले में परास्त करने के लिये अंग्रेज दा सोचते रहते थे। मौका पाकर १८१७ ई० में उन्होंने एक ऐसी सन्धि की, जिसके अनुसार मराठा राज्यों पर पेशवा का कोई अधिका न था। इस समाचार ने पेशवा को अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति करने को बाध्य किया। यही कारण था कि उसने भोंसला नरे और होल्कर से अंग्रेजों की शक्ति कम करने के लिये प्रार्थना की किन्तु कूटनीतिज्ञ अंग्रेज इस बात को भली प्रकार समझ गये औ उन्होंने भोंसला को १८१७ ई० में और १८१८ ई० में होल्कर को

सन्धि करने के लिये बाध्य कर लिया। इस प्रकार अपनी शक्तिक्षय होते देख पेशवा ने शस्त्र उठाया और पूना की रेजिडेन्सी को नष्ट-भ्रष्ट करके अंग्रेजों के शिविर पर धावा बोल दिया। पेशवा का सेनापति बापू गोखले वहाँ अन्तिम दम तक लड़ा। किन्तु उसके मरते ही मराठा वंश के कलंक बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजों के सामने पुनः घुटने टेक दिये। इसके बाद अंग्रेजों ने पेशवा को थोड़ी पेंशन पर बैठूर भेज दिया और वहाँ स्वयं राज्य करने लगे। बाजीराव का शेष जीवन किसी तरह व्यतीत हुआ, और अन्त में १८५१ ई० में उसने आखिरी दम तोड़ दिया।

अभ्यास

[क] 'हैदरअली अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था' इसको सिद्ध करते हुए मैसूर के दो युद्धों का परिचय दो।

[ख] टीपु सुल्तान का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वह एक अच्छा योद्धा और राजनीतिज्ञ था।

[ग] 'राजा रणजीत सिंह खालसा साम्राज्य का संस्थापक था' इस उक्ति को सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

[घ] प्रथम तीन पेशवाओं के जीवनचरित्र पर नोट लिखकर सिद्ध कीजिये कि उस समय मराठा वंश ने बहुत उन्नति की।

[ङ] नाना फड़नवीस, बाजीराव द्वितीय एवं मराठा वंश के पतन पर नोट लिखो।

अ
अंग्रे —o—
नके

सप्तदश खण्ड

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध महारानी लक्ष्मीबाई और नाना साहब

अंग्रेजों के शासनकाल में सन् १८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध अपना विशेष स्थान रखता है। अंग्रेज इसे सिपाही विद्रोह के नाम पुकारते हैं, जो पूर्णतः असत्य है। क्योंकि यह विद्रोह ऐसे समय में हुआ जब लार्ड डल्हौजी की नीति के कारण सर्वत्र अत्याचार, अनाचार, दुराचार और कदाचार का बोलबाला था। इस स्वतन्त्रता युद्ध का बीजारोपण तो सन् १७५७ में हुई सिराजुद्दौला के साथ प्लासी की लड़ाई ही थी, जो धीरे २ भयंकर रूप धारण कर गयी। इस विद्रोह के ये मुख्य चार कारण थे:—(१) राजनैतिक, (२) सामाजिक तथा धार्मिक, (३) सेना सम्बन्धी, (४) फुटकर।

[१] राजनैतिक कारण—लार्ड डलहौजी ने अपनी लैप्स नामक नीति से सारे भारत के राजनैतिक मण्डल में हलचल मचा दी। क्योंकि इस नीति में यह था कि 'यदि किसी अधीन था कर देने वाले राज्य का पुत्रहीन राजा या नवाब मर जाय तो उसके दत्तक पुत्र को राज्य सिंहासन पर न बैठाकर वह राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाय'। इधर संयोगवश डलहौजी के शासनकाल में बहुत से राजा मरे, जो पुत्रहीन थे। उनके मरते ही इस नीति के अनुसार वहाँ के राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिये गये, जिनमें प्रसिद्ध ये थे:—सतारा, झाँसी, नागपुर, जैतपुर (बुन्देलखण्ड में), सम्बलपुर था (उड़ीसा में), बघाट, (शिमला के पास), उदयपुर (मध्यप्रदेश में), । इसका फल यह हुआ कि पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब, सन्तानहीन झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अवध के नवाब के सम्बन्धी, देहली के बादशाह

बहादुरशाह, सतारा और नागपुर रियासतों के मराठें अंग्रेज़ों के कट्टर शत्रु बन गये और उन्हें भारत से बाहर निकालने की योजनाएँ बनाने लगे।

[२] सामाजिक तथा धार्मिक कारण—अंग्रेजों ने अपनी सभ्यता को हठपूर्वक भारतीयों पर लादने का प्रयास किया, जिसके लिये उन्होंने ये कार्य किये:—सती प्रथा का निषेध, ईसाई धर्म का प्रचार, विधवा विवाह का प्रचलन, धर्म परिवर्तन के बाद भी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार इत्यादि बातों से जनता को विश्वास हो गया कि अंग्रेज हमें ईसाई बनाना चाहते हैं। चारोंओर से ध्वनि हो रही थी कि हमारा धर्म खतरे में है।

[३] सेना सम्बन्धी कारण—भारतीय सेना के बल पर ही अंग्रेजों ने इधर-उधर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था, किन्तु साम्राज्य की धाक जमते देख अंग्रेजों ने भारतीय सेना का पहले जैसा आदर करना छोड़ दिया। भारतीय सैनिकों को योग्यता होने पर भी बड़ा पद न मिलता था। अंग्रेज सिपाहियों के साथ खुलम-खुल्ले पक्षपात होने लगा। सन् १८५६ ई० में अंग्रेजों ने 'सर्व-भारती' नामक कानून बनाया, जिसके अनुसार भारतीय सेना समुद्र पार भी लड़ने के लिये भेजी जा सकती थी, जिसे ब्राह्मण सैनिक अधर्म समझते थे। बंगाल की सेना में अधिकतर लोग अवध-नरेश के सम्बन्धी थे, जो अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में देखना पाप समझते थे। अफगान युद्ध में अंग्रेजों के हार जाने पर अंग्रेजों के प्रति जनता की वैसी अच्छी भावना न थी, जैसी कभी पहले थी। भारतीय सेना का अंग्रेज सेना से पाँच गुणा अधिक होना आदि कारण थे, जिनके कारण इस स्वतन्त्रता युद्ध को खूब सहारा मिला।

फुटकर कारण—प्लासी की लड़ाई के बाद यह अफ़वाह जोर से चल रही थी कि १८५७ ई० में अङ्गरेजी राज्य समाप्त हो जायगी।

यही कारण था कि कुछ देशभक्त रात दिन जनता के अन्दर देश भक्ति के भाव भर कर अङ्गरेजी साम्राज्य की जड़ें खोद रहे थे। इधर उन दिनों सैनिकों को नवीन राइफलें दी गयी थीं, जिनमें चरबी वाले कारतूस प्रयोग किये जाते थे। लोगों को विश्वास हो गया था कि कारतूसों के आगे गाय और सूअर की चरबी प्रयुक्त होती है। बस, इस विश्वास ने सैनिकों को अङ्गरेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाने को बाध्य कर दिया। यह विद्रोह इतना फैला कि सर्वत्र अङ्गरेजों के विरुद्ध सैनिक और जनता भड़क उठी, जिसके मुख्य केन्द्र (१) देहली, कानपुर, लखनऊ, और मध्य भारत था। इस प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध का प्रारम्भ १० मई सन् १८५७ ई० में मेरठ के स्थान से हुआ। क्योंकि वहाँ ८५ सैनिकों ने चरबी वाले कारतूसों के प्रयोग करने में असमर्थता प्रकट की। फल यह हुआ कि वे बन्दी बना लिये गये। इसके बाद दूसरे सैनिकों ने संयुक्त विद्रोह किया, जिसमें कई गोरे सिपाही कुत्ते की मौत मारे गये। अपनी धाक जमते देख सैनिकों ने जनता के सहयोग से जेल पर आक्रमण कर दिया और उन सैनिकों को छुड़ा दिया, जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

देहली—मेरठ के विद्रोहियों ने देहली पहुँचकर मुगल बादशाह को गद्दी पर बैठाया और वहाँ के कई अङ्गरेज सैनिक और अन्य अधिकारियों को यमलोक भेजा। इधर उधर से अनेक सैनिक टुकड़ियाँ भी देहली आ पहुँची। किन्तु, दुर्भाग्यवश वीर पञ्जाब के सैनिकों ने इसमें भाग नहीं लिया, उल्टा अङ्गरेजों की सहायता के लिये दिल्ली को घेर लिया और अन्त में जनरल निकलसन की अध्यक्षता में दिल्ली पर अङ्गरेजों की विजय हुई, परन्तु ठीक उसी समय निकलसन मारा गया। इधर वृद्ध मुगल बादशाह बहादुर शाह बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया और वहीं १८६२ ई० में वह मर गया। बहादुर शाह के दो पुत्र और एक पोता उसके सामने गोली से उड़ा दिये गये।

कानपुर—यहाँ के विद्रोही दल का नेतृत्व पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब के हाथ में था। अङ्गरेजों ने नाना साहब पर विजय पाने के कई प्रयत्न किये, किन्तु उस वीर के आगे उनकी एक न चली और अन्त में उन्हें आत्म समर्पण करना पड़ा। इस संघर्ष में भारतीयों की भूखी और प्यासी तलवारों को खूब भोजन मिला। अन्त में जनरल हैवेलाक एक बड़ी सेना के साथ कानपुर आया, जिसमें नाना साहब को पराजित होकर भागना पड़ा।

लखनऊ—यहाँ के स्वतन्त्रता प्रेमियों ने चीफ कमिश्नर सर हैनरी लारेन्स के साथ सारी अङ्गरेज रेजीडेन्सी को घेर लिया। सर हैनरी के तो पहले ही आक्रमण में मारे डर के प्राण पखेरू उड़ गये, किन्तु उसके साथियों ने जनरल हैवेलाक, औटरम और सर कोलिन कैम्पबल के सहयोग से लखनऊ पर विजय प्राप्त की।

मध्यभारत—मध्य भारत में और बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्रता के सेनानियों में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और नाना साहब के सेनापति ताँतिया टोपे का नाम विशेष आदरणीय है। सर ह्यूरोज के सेनापतित्व में एक बड़ी गोरों की सेना उपरोक्त स्वतन्त्रता प्रेमियों को दबाने के लिये बढ़ी, जिनका डटकर सामना किया गया। सुभद्रा कुमारी चौहान ने कहा भी है :—

बुन्देले हर बोलों के मुख, हमने सुनी कहानी।
खूब लड़ी मरदानी वह थी, झांसी वाली रानी॥

किन्तु अन्त में असंख्य गोरों को अपने खड़्ग का शिकार बनाकर इस वीरांगना ने वीरगति ली। इधर तांतिया टोपे ने भी अपने बल का अच्छा परिचय दिया, किन्तु अन्त में मारा गया। उपरोक्त स्वतन्त्रता प्रेमियों की कुर्बानी अन्त में रंग लायी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जनाजा उसके अपने भाई अङ्गरेजों के हाथ से ही निकाला गया और सदा के लिये दफनाया गया। इसके बाद यहाँ का शासन इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट ने अपने हाथ में ले लिया।

और महारानी विक्टोरिया ने यह घोषणा की—(१) देशी राज्य के शासकों को अधिकार होगा कि वे पुत्रहीन अवस्था में पुत्र गोद में ले सकें, (२) धर्म के विषय में सबको स्वतन्त्रता होगी, (३) भेदभाव के बिना योग्यता के अनुसार सरकारी पद दिये जायेंगे, (४) विद्रोहियों को जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं किया क्षमा कर दिया जावेगा, (५) भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शिल्प सम्बन्धी उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जायगा। लोगों का विचार है कि यह घोषणा अङ्गरेजी राज्य में भारतीयों की बहुत बड़ी विजय थी।

स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध में असफलता के कारण—(१) इस विद्रोह का कोई एक योग्य संचालक न था, जिसकी योजना पर लोग चलते। (२) भारतीग नवाबों और राजाओं में कई लोग ऐसे थे जो विद्रोह में भाग लेना तो दूर रहा, उल्टा विद्रोह दमन में अपने इन गौरांग प्रभुओं का सहयोग कर रहे थे। (३) विद्रोही सैनिकों के पास लड़ने के लिये पर्याप्त साधन न थे, जैसे अङ्गरेजों के पास थे। (४) साधारण जनता में इस विद्रोह का प्रचार नहीं हुआ, इत्यादि कारण थे कि अङ्गरेज सफल हुए। अस्तु, इतना तो प्रत्येक देशभक्त मानता है कि यह युद्ध हमारी आज की स्वतन्त्रता की आधारशिला थी।

महारानी लक्ष्मीबाई—इस वीरांगना का जन्म १९ नवम्बर सन् १८३५ ई० में भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस में हुआ। इनके पिता का नाम मोरोपन्त एवं माता का नाम भागीरथी बाई था। बाल्यावस्था में ही इनके चेहरे से तेज टपकता था। यही कारण था कि आगे चलकर इनकी सैनिक कार्यों में बड़ी रुचि हो गयी। नाना साहब के साथ बिठूर में इनको प्रारम्भिक शिक्षा दी गयी। १८४० ई० में झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ माता पिता ने इनका विवाह कर दिया। इनके घर में एक पुत्र हुआ, जिसकी दुर्भाग्यवश शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। राजा ने दुःखी होकर

एक दामोदर राव नामक ५ वर्ष के लड़के को पुत्र बना लिया। इधर २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० में राजा की अचानक मृत्यु हो गयी। रानी का विश्वास था कि अङ्गरेज अपनी सन् १८१७ ई० में हुई सन्धि का पालन करेंगे। किन्तु लालची डलहौजी ने सन्धि को ठुकरा कर झांसी का राज्य अङ्गरेज साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और रानी को यह कहकर कि बाद में वापस कर दिया जायगा, सब राज्य कोष भी हड़प लिया। अब रानी को ५ हजार रुपया मासिक मिलने लगा। इसे रानी ने अपमान समझा और विद्रोह कर दिया। फलस्वरूप ८ जून सन् १८५७ ई० में रानी ने मारते-मारते अङ्गरेजों को अपने दरबार से निकाल दिया और वहाँ स्वतन्त्र शासन करने लगी। रानी के शासन से प्रजा बड़ी प्रभावित हुई और उसने शासन कार्य में रानी को पूरा सहयोग दिया। किन्तु अङ्गरेज अपना यह अपमान न सह सके और ८ जनवरी १८५८ ई० में सर ह्यू रोज की अध्यक्षता में सेना भेज कर झांसी राज्य पर पुनः अधिकार करना चाहा। रानी ने बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया और अङ्गरेजों को वापस जाने के लिये विवश कर दिया। इसी बीच में तोपखाने का अधिकारी खुदाबख्श और गुलाम गौसखां मारे गये, जिससे कुछ विश्वासघातियों का सहयोग पाकर अङ्गरेजों ने विजय प्राप्त की। इसके बाद उसी रात को झांसी की रानी अपने पुत्र दामोदर को पीठ पर बाँधे हुए घोड़े पर चढ़कर कालपी के लिये रवाना हुई। बीच में कुछ अङ्गरेज सिपाहियों ने हस्तक्षेप किया, जिनको महारानी की तलवार ने ठंडा कर दिया। किसी प्रकार झांसी की रानी अर्द्धरात्रि में कालपी पहुँची, किन्तु वहाँ भी अङ्गरेजों ने आक्रमण किया और उन्हें सफलता मिली। इसके बाद रानी ने कुछ सहयोगियों के साथ ग्वालियर पर आक्रमण करके वहाँ का राज्य अङ्गरेजों से जीत लिया। ग्वालियर का किला हाथ में आते ही झांसी की रानी के सहयोगियों की शैथि परस्प

मुद्ध हो गयी। राव साहब को वहाँ का पेशवा घोषित किया गया अंङ्गरेजों ने मौका पाकर वहाँ भी धावा बोल दिया। पेशवा अंग्रेजों की गड़गड़ाती हुई तोपों से विचलित हो उठा, किन्तु रानी ने अपने हाथ में सैनिक नेतृत्व लेकर जेनरल स्मिथ को दिखा दिया कि भारतीय नारियों में कितनी शक्ति और उत्साह होता है। इस प्रकार १७ जून १८५७ ई० को युद्ध में रानी की विजय हुई। किन्तु दूसरे रोज सर ह्यूरोज और स्मिथ ने अपनी अपार सेना के साथ पुनः आक्रमण किया। जिसमें रानी ने बड़ी वीरता से काम लिया और लड़ते-लड़ते अन्त में चारों ओर घिर गयी। इस प्रकार अपने को खतरे में देखकर रानी ने तलवार का आश्रय लिया और अङ्गरेज सैनिक गाजर मूली की तरह कट-कट कर पृथवी पर गिरने लगे। किन्तु भयानक एक गोली रानी के सीने में लगी और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। बस, थोड़ी देर बाद ही भारत की आन शान की संरक्षिका ने देव दूतों के साथ भारत की यह दुर्दशा बताने के लिये विष्णुलोक को गमन किया।

नाना साहब—सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्र संग्राम में नाना साहब का नाम बड़ा महत्त्व रखता है। अन्तिम पेशवा बाजी राव ने इन्हें दत्तक पुत्र बनाया था। पहले वर्णन किया जा चुका है कि बाजी राव द्वितीय अंग्रेजों की कठपुतली था। यही कारण था कि वह ८ लाख वार्षिक पेन्शन लेकर बिठूर (कानपुर के पास स्थान है) में विलासी जीवन यापन करता था। इसी समय नाना साहब को अच्छी तरह शिक्षा दी गई और यह भी प्रारम्भिक अवस्था में अंग्रेजों के बड़े भक्त थे। किन्तु सन् १८५१ ई० में बाजीराव की मृत्यु के बाद डलहौजी ने और सब पेन्शन बन्द कर दी, केवल ६२ हजार रुपया नाना साहब को देना चाहा। इसे अपमान समझकर नाना साहब ने रुपया नहीं लिया और इस अन्याय की अपील इंगलैण्ड तक की, किन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला।

इसके बाद अंग्रेजों की इस धूर्त्तता का जवाब देने के लिये नाना साहब ने योजना बनाई। सर्व प्रथम उन्होंने अपने निकटवर्तियों को अपनी योजना कार्यान्वित करने का आदेश दिया, जिसमें पदच्युत नवाब, राजा, और सैनिक कर्मचारी थे। मन्दिरों, मस्जिदों एवं अन्य पूजा-पाठ आदि स्थानों पर गुप्तरूप से विदेशी सरकार के प्रति कटु भावना पैदा करने के लिये भाषण आदि का प्रबन्ध किया। उस समय के वक्ताओं में मौलवी अहमद शाह का नाम बड़े आदर से लिया जाता था, जो फैजाबाद का एक बड़ा जमीदार था। इसके भाषण की शैली इतनी उत्तेजनात्मक होती थी कि निरुत्साहियों, भीरुओं एवं निर्बल व्यक्तियों में भी कुछ करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। नाना साहब को सहयोग देना प्रायः सबने स्वीकार कर लिया। अन्त में ३१ मई सन् १८५७ ई० विप्लव का दिवस निश्चित किया गया। इस आन्दोलन को पूर्ण सफल बनाने के लिये नाना साहब और उनके सहयोगियों ने प्रायः भारत के प्रमुख नगरों में गुप्तरूप से भ्रमण किया।

नाना साहब के अथक परिश्रम से यह आन्दोलन ४ जून की अर्द्ध-रात्रि को कानपुर से आरम्भ हुआ। शीघ्र ही दूसरे दिन सरकारी कार्यालयों पर देशभक्तों का अधिकार हो गया। ६ जून को नाना साहब ने जेनरल ह्वीलर को किला सौंपने का अन्तिम आदेश दिया, जिसकी उसने अवेहलना की। फल यह हुआ २१ दिन तक निरन्तर किले पर गोलाबारी की गई, जिससे घबराकर ह्वीलर ने आत्म समर्पण कर दिया। सारा खजाना, अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य वस्तुएँ नाना साहब के हाथ लगीं। इस किले पर २७ जून को बहादुर शाह के नाम पर हरा झण्डा फहराया गया और १०१ तोपों की सलामी दी गयी। इसके बाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नाना साहब पेशवा घोषित किये गये। इसके बाद फतेहपुर पर आक्रमण किया गया, किन्तु परिस्थिति वश नाना साहब की सेना को पीछे हटना पड़ा। इसके बाद १० जुलाई को विशाल सेना के साथ हैवलाक ने कानपुर पर आक्रमण किया,

जिसका स्वयं नाना साहब ने डटकर सामना किया, किन्तु परिस्थिति ने उन्हें १७ जुलाई को पीछे हटने के लिये बाध्य कर दिया। इसके बाद झाँसी की रानी वहाँ आ पहुँची और उसने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश अंग्रेजों की विजय हुई। नाना साहब कहा जाता है कि अपने अनेक सहयोगितों के साथ नेपाल की ओर भाग गये। इसके बाद उनका क्या हुआ कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना अवश्य ठीक है कि उनके सहयोगियों में तात्याटोपे ने अनेक स्थानों पर इसके बाद भी अङ्गरेजों का सामना किया। अन्त में तात्याटोपे को अपने ही किसी भारतीय के विश्वासघात से अङ्गरेजों द्वारा फाँसी पर लटकना पड़ा। इस प्रकार स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध की पूर्णाहुति हुई।

शिवबालक प्रजापति

अभ्यास

[क] प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध (सन् १८५७ ई०) के मुख्य कारणों से आप क्या समझते हैं ? उन पर विस्तृत प्रकाश डालिये।

[ख] प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के मुख्य केन्द्र कौन थे ? और अन्त में इस संग्राम का उन पर क्या प्रभाव पड़ा ? स्पष्ट उत्तर दो।

[ग] इस स्वतन्त्रता संग्राम के असफल रहने के कारणों का सामान्य परिचय दो।

[घ] झाँसी की रानी का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अद्वितीय थी।

[ङ] क्या यह सच है कि नाना साहब ही १८५७ ई० के संग्राम के जन्मदाता थे ? युक्तियुक्त उत्तर दो।

—o—

अष्टादश खण्ड

अंग्रेजी शासन का प्रारम्भ

विक्टोरिया और नवजागरण—प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राज्य सत्ता को समाप्त कर दिया। इसके बाद साम्राज्ञी विक्टोरिया की छत्रछाया में भारत का भाग्य सितारा चमकने लगा। विक्टोरिया ने भारत पर इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट का शासन होने पर भारतीयों की सुख सुविधा के लिये जो घोषणा की उसे हम पिछले खण्ड में पढ़ चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि घोषणा पत्र जो साम्राज्ञी की ओर से इलाहाबाद में घोषित किया गया था, वह बड़ा चित्ताकर्षक और भारतीयों की दृष्टि से बड़ा लाभदायक था। किन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि उसे पूर्णरूप से यहाँ के अधिकारियों ने चरितार्थ नहीं किया। भारत पर सीधा अंग्रेजी राज्य होने पर सर्व प्रथम लार्ड कैनिंग यहाँ आये। वह कम्पनी के अन्तिम गवर्नर जनरल और इंगलैण्ड के शासक की ओर से प्रथम वाइसराय थे। निःसन्देह ये बड़े दयालु शासक थे। प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लेने वाले लोगों के साथ भी इनका अच्छा वर्ताव था। यही कारण है कि अंग्रेज लोग व्यंग्य से इन्हें 'दयालु कैनिंग' कहते थे। लार्ड कैनिंग ने विक्टोरिया की घोषणानुसार ये सुधार किये (१) सैनिक सुधार सेना का नवीन ढंग से निर्माण किया गया, जिसमें अंग्रेजों की संख्या बढ़ा दी गयी। (२) बंगाल भूमि कानून—बंगाल में जमीदार मन माने ढंग से कृषि कर लेते थे जिसे १८५९ ई० में कानून बनाकर कैनिंग ने कृषकों की दशा सुधार दी। (३) दण्ड विधान—१८६० ई० में लार्ड मैकाले द्वारा रचित दण्ड विधान में सरलता कर दी गयी, (४) हाई कोर्ट—बम्बई, कलकत्ता, और मद्रास में हाईकोर्ट स्थापित किये गये। (५) आर्थिक सुधार—

Binod...

कम्पनी की आर्थिक दशा भारत के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध ने कमजोर कर दी थी, जिसके सुधार के लिये कुछ कर और लगाये गये। इण्डियन कौंसिल ऐक्ट—इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी सभा में भिन्न-भिन्न विभाग कर दिये गये, जिससे कार्य अधिक सुगमता से होने लगा। इस ऐक्ट के अनुसार बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के प्रान्तों को नियम निर्माण करनेका अधिकार मिल गया। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन के अधिकार भी भारतीयों को मिलने लगे। साम्राज्ञी विक्टोरिया के समय क्रम से भारत के ये लोग वाइसराय बनें—लार्ड कैनिंग, लार्ड एल्गिन प्रथम, सरजानलारेंस, लार्ड मैयो, लार्ड नार्थ ब्रुक, लार्ड लिटन, लार्ड रिप्पन, लार्ड डफ्रिन—इसके शासन काल में १८८५ ई० में भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ, लार्ड लैन्सडौन, एल्गिन द्वितीय, लार्ड कर्जन—इसके शासन काल में ही विक्टोरिया की १९०१ ई० में मृत्यु हो गयी। सम्राज्ञी के मरने के बाद उसका पुत्र एडवर्ड सप्तम ने इंगलैण्ड की राज्य गद्दी सम्भाली। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि साम्राज्ञी विक्टोरिया का शासन काल पर्याप्त सुविधाओं का काल था। साम्राज्ञी बड़ी योग्य, दयालु, कार्यकुशल एवं राजनीतिज्ञ थी। यही कारण है कि आज भी हम उसे सदैव याद करते हुए कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सामाजिक नवजागरण—संसार का यह नियम है जब मानव का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं बौद्धिक ह्रास होने लगता है तो कुछ ऐसी विभूतियों का प्रादुर्भाव होता है, जो अपने तन-मन-धन से समाज सुधार में जुट जाती हैं। यही दशा भारतीय मानव समूह की १८ वीं शताब्दी के अन्त में और १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में दृष्टिगोचर हुई। सर्वत्र पराधीनता के कारण समाज में बाल विवाह, कन्या विक्रय, बहु विवाह, सती प्रथा, छुआ छूत आदि के विषय में कट्टरता ने पैर जमा लिया। इधर धार्मिक अवस्था में लोगों ने अपनी प्राचीन परम्परा का परित्याग कर दिया था।

पाखण्ड, प्रेत पूजा, अन्ध विश्वास एवं कट्टरता को सर्वत्र आदर दिया जाता था। ईसाई पादरी बड़े जोर-शोर से निर्धन और नीच समझे जाने वाले हिन्दुओं को अपने धर्म में मिला रहे थे। शिक्षा की दशा बड़ी दयनीय थी। स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझा जाता था। लोगों को अरबी फारसी और अङ्गरेजी को माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। संस्कृत का पठन-पाठन केवल घरेलू था। लोग हिन्दी को बड़ी उपेक्षा दृष्टि से देखने लगे थे। भारतीयों की यह दुर्दशा देखकर सर्व प्रथम १७७४ ई० में राजा राममोहन राय और इसके बाद महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की हृदय बड़ा दुःखी हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस दुर्दशा से भारतीयों को छुटकारा दिलाकर हम पुनः भारत को भारत बनायेंगे। बस, थोड़े ही दिनों में इन महान् विभूतियों के प्रभाव से भारतीयों में जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। आज की स्वतन्त्रता का श्रेय भी इन्हीं विभूतियों को दिया जा सकता है।

राजा राममोहन राय—इनका जन्म बंगाल के हुगली जिले के कृष्ण नगर में एक सम्भ्रान्त कुल वाले रमाकान्त राय के घर १७७४ ई० में हुआ। इनकी माता का नाम तारिणी देवी था। उस समय की प्रथानुसार इनका विवाह बाल्यावस्था में हुआ। संस्कृत, अरबी और फारसी के अध्ययन के बाद २१ वर्ष में इन्होंने अङ्गरेजी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। राजा राममोहन राय के धार्मिक विचार बड़े सुलझे हुए थे। वेद और उपनिषदों के अध्ययन से उनकी आँखें खुल गयी थीं। उनका पक्का विश्वास था कि ईश्वर एक है। परस्पर झगड़ने वाले धर्मावलम्बियों में उन्हें एकता ही मालूम पड़ती थी। धार्मिक सहिष्णुता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के आधार पर उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस समाज के प्रचार के लिये उन्होंने अनेक पुस्तकें भिन्न भाषाओं में लिखीं, जिनका अध्ययन करने से

पता चलता है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। समाज सुधारकों में उनका विशेष स्थान हैं। इनका सबसे महत्त्वशाली कार्य सती प्रथा बन्द करना था। उस समय भारत में सती प्रथा थी विशेष कर बंगाल में। राजाराममोहन राय इस प्रथा को बचपन से ही बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। कहा जाता है कि उनके बड़े भाई की मृत्यु होने पर उनकी भावज को लोगों ने बलात् सती होने के लिये बाध्य किया। इस दृश्य को देख कर इस महापुरुष ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य इस प्रथा का अन्त करके रहूँगा। बड़े संघर्ष के बाद इनकी प्रेरणा से लार्ड विलियम बैन्टिक ने इस प्रथा के विरुद्ध कानून बना दिया। इस कानून के पास होते ही असंख्य नारियों की प्राण रक्षा होने लगी। शिक्षा प्रसार के लिये उन्होंने अनेक जगह विद्यालय खुलवाये जिनमें अङ्गरेजी माध्यम से अध्ययन कराया जाता था। अङ्गरेजी माध्यम की उस समय राजाराममोहन राय बड़ी आवश्यकता समझते थे। शिक्षा प्रसार के अतिरिक्त राजनैतिक कार्यों में भी उन्होंने भाग लिया। सन् १८२१ ई० में अङ्गरेजी शासक की ओर से सूचना निकली कि कोई भी समाचार पत्र बिना राज्य की आज्ञा के प्रकाशित नहीं हो सकता। समाचार पत्रों की इस परतन्त्रता पर इन्होंने आन्दोलन किया और राजनैतिक क्षेत्र में आदर प्राप्त किया।

दिल्ली के अन्तिम सम्राट अकबर द्वितीय ने सन् १८३० ई० में अपनी प्रार्थना सम्राट के पास राजाराम मोहन राय द्वारा पहुँचायी थी। वहाँ पहुँचने पर इनकी बड़ी आवभगत हुई और यह अपने कार्य में सफल भी हुए। वहाँ जाकर इन्होंने भारतीयों की वास्तविक स्थिति का लोगों को ज्ञान कराया। इंगलैंड की अनेक संस्थाओं ने यथोचित आदर किया। किन्तु अत्यधिक परिश्रम करने से यह बीमार पड़े और सितम्बर सन् १८३३ ई० में ब्रिस्टल स्थान पर विश्राम के लिये गये। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद २७ सितम्बर सन् १८३३ ई०

में अचानक इनका अन्तकाल हो गया। इनके शव पर आज भी वहाँ एक समाधि मन्दिर बना हुआ है। सचमुच राजाराम मोहन राय भारत की एक महान् विभूति थे।

महर्षि दयानन्द—यह दूसरी विभूति है जिसने उस समय के जगत् प्रवाह को बड़ी शक्ति से मोड़कर संसार को दिखा दिया कि एक दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति सब कुछ कर सकता है। इस विभूति का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात के टंकारा स्थान पर हुआ। इनका जन्मनाम मूलशंकर था, जो बाद में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से संसार के सामने आये। इनके माता पिता पक्के पौराणिक थे। एक बार शिव रात्रि के दिन घटना विशेष ने इनके विचारों में उथल-पुथल मचा दी और ये सच्चे गुरु की खोज करने के सोच में लगे। अन्त में इसीलिये इन्होंने १९ वर्ष की अवस्था में घर छोड़ दिया। मथुरा में स्वामी विरजानन्द सरस्वती को पाकर ये बहुत प्रसन्न हुए और वहाँ चिरकाल तक उनके पास रहकर इन्होंने अध्ययन किया। इधर प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के दमन के बाद लोग आत्मविश्वास और धैर्य खो कर रूढ़ियों में फँस गये थे। यह दशा देखकर स्वामी दयानन्दजी घबरा उठे और समाज की कुरीतियों के विनाश के लिये डट गये। अपने कार्य को सुचारु ढंग से चलाने के लिये उन्होंने सन् १८७५ ई० में सर्वप्रथम बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की और बाद में सन् १८७७ ई० में लाहौर में आकर उसका प्रचार किया।

अपने कार्य में अनवरत कार्य करने वाले महर्षि दयानन्द को उस समय की सब कुरीतियों के विनाश में सफलता मिली। विधवाओं की स्थिति सुधार के लिये उन्होंने सर्वत्र विधवाश्रम खोले और अनाथों की रक्षा के लिये अनाथालय। जाति-पाँति, ऊँच-नीच, सवर्ण-असवर्ण के भेद-भाव को वे निरर्थक समझते थे। अछूत बन्धुओं की दशा सुधारने में उन्होंने पूरा प्रयास किया। वेदों में उनको पूर्ण आस्था थी, क्योंकि वे अन्तिम साँस तक वेदों का प्रचार करते रहे। मूर्ति

पूजा, अनेकेश्वरवाद, श्राद्ध एवं अवतारवाद की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की। ईसाई धर्म प्रचारक और मुस्लिम धर्म समर्थक उनके तर्कों के सामने टिकने का साहस न करते थे। संस्कृत प्रचार के लिये उन्होंने जगह जगह पर गुरुकुलों की स्थापना करवायी। संस्कृत के समर्थक होते हुए भी उन्होंने समय गति पहचानते हुए हिन्दी में अपने विचार व्यक्त किये। यही कारण है कि उनके विचारों का पुलिन्दा 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में ही है। स्वदेश प्रेम उनमें कूट कूट कर भरा हुआ था। यह सत्य है कि स्वामी दयानन्दजी ने अपने समय में जो जो कार्य किये उसके लिये आज हिन्दू समाज उनका ऋणी है। किन्तु ऐसी त्यागमयी मूर्ति का अन्त धोखे से दी गयी विष से ३० अक्टूबर सन १८८३ ई० में हुई, जो वस्तुतः भारतीयों पर कलंक का टीका है।

राजनैतिक जागरण—समाज सुधारकों ने अपने अथक परिश्रम से लोगों में ऐसी भावना भर दी थी कि लोग अब अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान करने लगे थे। राजाराममोहन राय के परिश्रम से लोगों ने अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन कर उसकी कूटनीति का पर्याप्त ज्ञान कर लिया था। पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे विद्वान को आई० सी० एस० परीक्षा पास करने पर भी नौकरी न देने पर लोगों में अंग्रेजों के प्रति कटुता के भाव पैदा कर दिये। अब लोग प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध भाषण देने लगे थे, यह आन्दोलन देखकर कुछ अङ्गरेज कर्मचारी भी भारतीयों से सहानुभूति प्रकट करने लगे थे। भारतीयों के पक्ष का समर्थन करने वाले अङ्गरेजों में ह्यूम, जान ब्राइट, हेनरी फासेट, चार्ल्स ब्राडला का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इधर दादा भाई नौरोजी के परिश्रम से सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

इंडियन नैशनल कॉंग्रेस—१८८५ ई० में इण्डियन नैशनल कांग्रेस भारतवर्ष की सबसे बड़ी राजनैतिक सभा है, जिसमें भार

की सब जातियाँ सम्मिलित हैं। इसके संचालक कई एक पढ़े-लिखे भारतीय तथा अङ्गरेज थे। जिनमें से मिस्टर ए० ओ० ह्यूम का नाम विशेषतया स्मरणीय है। इस कांग्रेस का सम्मेलन प्रतिवर्ष भारत के किसी नगर में होता है। इसका प्रथम सम्मेलन १८८५ ई० में बम्बई में मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनरजी के सभापतित्व में हुआ था।

आरम्भ में तो कांग्रेस की माँगें ये थीं कि नियम-निर्माण सभाओं को विस्तृत किया जाय और उनमें भारतीय-अधिक संख्या में लिये जायें, भारतवासियों को उच्च पदों पर अधिक संख्या में लिया जाये और सेनाओं के व्यय कम किये जायें। उस समय गवर्नमेंट का व्यवहार भी कांग्रेस की ओर सहानुभूतिपूर्ण था, परन्तु धीरे धीरे गवर्नमेंट का व्यवहार बदलता गया और कांग्रेस का दृष्टिकोण भी बदलता गया। सन् १९२९ ई० में पंडित जवाहरलाल जी के नेतृत्व में, लाहौर काँग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् काँग्रेस में कई उतार-चढ़ाव आये। अन्ततः काँग्रेस के कार्य-कलाप और कई और कारणों से विवश होकर १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को अङ्गरेजी सरकार ने भारत को स्वतन्त्र कर दिया और इस तरह काँग्रेस अपने उद्देश्य में सफल हुई। अब काँग्रेस के सामने देश की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति का कार्यक्रम है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक—तिलक का जन्म १३ जुलाई १८५६ ई० को रत्नगिरि (कोंकण प्रान्त) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम गंगाधर रामचन्द्र तिलक और माता का नाम पार्वती बाई था। संस्कृत व्याकरण की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर आप दस वर्ष की अवस्था में स्कूल में प्रविष्ट हुए। अंग्रेज हेडमास्टर से मतभेद हो जाने के कारण आप तब तक स्कूल नहीं गये जब तक हेडमास्टर का तबादला न हो गया। १८७२ में मैट्रिक पास कर क्रमशः वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १८८० में तिलक ने पूना में इंगलिश स्कूल की स्थापना की। इसका परिणाम पहले वर्ष ही ऐसा उत्तम रहा कि सारे प्रान्त में धाक जम गई। १८८४ ई० में आपने डेक्कन सोसाइटी की स्थापना की, जिसके प्रयत्न से फर्ग्युसन कालेज की स्थापना हुई। १८८१ में उन्होंने 'केसरी तथा मरहठा' नामक पत्र निकाले, जो शीघ्र ही जनता के सर्वप्रिय हो गये। इन्होंने कोल्हापुर राज्य की खरी आलोचना की, जिससे दोनों सम्पादकों को चार-चार मास का कठोर कारावास हुआ।

१८९५ में तिलक बम्बई कौंसिल के सदस्य चुने गये, जहाँ आपने सदैव लोक-मत का समर्थन किया। १८९६ के दुर्भिक्ष में आपने जनता की बड़ी सहायता की। सस्ते अन्न की दुकानें खुलवाईं और किसानों का लगान माफ करवाया। उसी समय फैले हुए प्लेग में भी आपने जनता की बड़ी सहायता की। स्थान-स्थान पर क्वेरण्टीन खोले गये। इस समय किये गये पुलिस के अत्याचारों की आपने कड़ी निन्दा की। स्त्रियों के सतीत्व तक नष्ट होने पर चावेकर नामक व्यक्ति ने महामारी समिति के प्रधान मि० रेण्ड को मार डाला। सरकार ने समझा कि यह उत्तेजना 'मरहठा' और 'केशरी' पत्रों द्वारा ही हुई है। अतः तिलक को डेढ़ वर्ष की सजा हुई। इस जेल-जीवन में आपने 'औराइन' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रन्थ की पाश्चात्य विद्वानों तक ने बड़ी प्रशंसा की। मेक्समूलर ने इस ग्रन्थ से प्रभावित होकर महारानी विक्टोरिया के पास में तिलक की मुक्ति के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा, जिससे वे मुक्त हो गए। इसके पश्चात् तिलक पर 'ताई महाराज केस' चला, जिसमें भी आप निर्दोष सिद्ध हुए।

१८९५ से १९०४ तक आप काँग्रेस के उग्र दल के नेता रहे। लार्ड कर्जन की उस नीति का विरोध किया जिसके द्वारा वे मंत्रियों को सरकार को ही सौंपना चाहते थे।

आन्दोलन में भी आपने बड़ा काम किया, जिसके कारण आपको ६ वर्ष का कठिन कारावास तथा १०००) रु० जुर्माने का दण्ड मिला। इस बार आप मांडले जेल में रखे गये, जहाँ आपने 'गीता रहस्य' नामक अद्भुत ग्रन्थ की रचना की। आपके जेल जीवन में ही आपकी पत्नी की मृत्यु हो गई, जिस शोक को आपने बड़े धैर्य के साथ सह लिया।

जेल से मुक्त होने पर आपने एनीबीसेन्ट द्वारा चलाये गये 'होम रूल' आंदोलन में पूरा भाग लिया, जिसके कारण आपसे बीस-बीस हजार की जमानतें माँगी गईं। अपील करने पर तिलक निर्दोष सिद्ध हुए और जमानतें रद्द हो गईं।

तपस्वी तिलक का सारा जीवन देश-प्रेम में बीता। जेल में भी आप अकर्मण्य होकर नहीं बैठे। कठिन परिश्रम के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। ज्वर आने पर अनेक उपद्रव बढ़ गये, जिसके कारण ३१ जुलाई १९२० को सरदार-गृह बम्बई में आपकी मृत्यु हो गई।

गोपाल कृष्ण गोखले—गोपालकृष्ण गोखले भारत के एक सच्चे देश भक्त तथा कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता थे। उनका जन्म १८६६ ई० में एक ब्राह्मण मराठा घराने में हुआ। कुछ समय तक वे फरगुसन कालिज पूना में प्रोफेसर रहे। वे अपने समय के बड़े योग्य नीतिज्ञ थे और गवर्नमेंट तथा जनता दोनों आपकी योग्यता को मानते थे। गोखले गवर्नर-जनरल की नियम-निर्माण कौंसिल के सदस्य भी रहे और वहाँ उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य स्वीकृत किये जाने के लिये एक बिल पेश किया, परन्तु यह बिल पास न हो सका। गोखले उच्च कोटि के वक्ता थे और उनके भाषणों में जादू का सा प्रभाव था। १९०५ ई० में उन्होंने पूना में सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की जो आज तक भी है। १९१५ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

महात्मा गांधी—सन् १९२६-४८ ई० में महात्मा गांधी जिन्हें लोग श्रद्धा से 'बापू' के नाम से याद करते हैं, जगद्-विख्यात व्यक्तियों में से थे। आप भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने वाले तथा सत्यता और अहिंसा के पुजारी थे। आपका जन्म २ अक्टूबर १८६९ ई० में काठियावाड़ के एक नगर पोरबन्दर में एक प्रतिष्ठित बनियाँ घराने में हुआ था। आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। आपके पिता और दादा काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत के दीवान थे। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास करने के पश्चात् आप शिक्षा के लिये इङ्गलैण्ड चले गये और वहाँ से बैरिस्टर बन कर आप बम्बई हाई कोर्ट में प्रैक्टिस करने के लिये वापस आये परन्तु आपको कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई।

१८९३ ई० में एक अभियोग के लिये आपको दक्षिणी अफ्रीका जाना पड़ा। आप गये तो वहाँ एक वर्ष के लिये थे, परन्तु वहाँ बीस वर्ष रहे। आपने वहीं प्रैक्टिस आरम्भ कर दी और जब आपने वहाँ भारतवासियों के साथ दुर्व्यवहार होते देखा। तो सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। आप वहाँ तीन बार कैद भी हुये और आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की।

१९१४ ई० में आप भारतवर्ष लौट आये, उन दिनों प्रथम महायुद्ध हो रहा था। आपने इस युद्ध में अङ्गरेजी सरकार की बड़ी सहायता की, परन्तु जब युद्ध की समाप्ति पर रौलेट ऐक्ट पास हुआ तो आपने भारतवर्ष में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया। फिर पंजाब के अत्याचारों तथा खिलाफत के प्रश्न के कारण असहयोग आन्दोलन प्रचलित किया और थोड़े से वर्षों में ही आप लोक प्रसिद्ध हो गये।

इसके पश्चात् लगभग ३० वर्ष का काल महात्मा गांधी का ही युग था। आप सारे देश की राजनीति पर छाये हुए थे। आपने केवल अहिंसा और सत्यता के बल पर अपने देश को स्वतन्त्र कराने

के लिये संसार की सबसे बड़ी शक्ति बर्तानवी साम्राज्य के साथ युद्ध किया और कई उतार चढ़ाओं के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ ई० को अपने देश को स्वतन्त्र कराने में सफल हो गये। आप ऐसा भारतवर्ष देखना चाहते थे जिसमें धनी और निर्धन में कोई भेद न हो, जिसमें सब मत-मतांतरों के अनुयायी शान्ति पूर्वक रह सकें, जिसमें पुरुषों तथा स्त्रियों के अधिकार समान हों, जिसमें छूतछात का चिन्ह तक न हो, जिसमें नशीली वस्तुओं का प्रयोग वर्जित हो, परन्तु आयु ने साथ न दिया। ३० जनवरी १९४८ ई० को देहली में आपका वध कर दिया गया। आपके वध पर सारे संसार में घोर शोक मनाया गया। लार्ड माउंटबैटन ने आपकी मृत्यु पर कहा था कि भारत वस्तुतः सारा संसार उस प्रकार के मानव को नहीं देख सकेगा।

पंडित जवाहरलाल नेहरू—पण्डित जवाहरलाल नेहरू आज-कल स्वतन्त्र भारत के महान मंत्री और एक उच्च-कोटि के माननीय व्यक्ति हैं। आप स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र हैं। आप का जन्म सन् १८८९ ई० में हुआ। इंगलैंड से आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा पास की। इंगलैंड में रहते हुए ही आप के दिल में देश की स्वतन्त्रता की तड़प उत्पन्न हो गयी थी। अतः वहाँ से लौटने के पश्चात् शीघ्र ही आपने राजनैतिक कार्यों में भाग लेना आरंभ किया और थोड़े से समय में ही आप बहुत प्रसिद्ध हो गये। सन् १९२९ ई० में आप लाहौर कांग्रेस के सभापति बने, जिसमें 'सम्पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव पास हुआ। आप की बुद्धि अनुपम है और आपका बलिदान भी अद्वितीय है।

देश और जाति के लिये आपको कई बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। आप काँग्रेस के चोटी के नेता हैं और जनता की आप में अत्यन्त श्रद्धा और ममता है। आप १९३६-३७ ई० में भी कांग्रेस के प्रेजिडेन्ट रहे। आप एक लोक-प्रसिद्ध लेखक भी हैं। आजकल स्वतन्त्र भारत के प्रधान मंत्री हैं और आप की गणना संसार के उच्चकोटि के राज-

नीतिज्ञों में की जाती हैं १७ अक्टूबर १६४६ ई० में अमरीकी कोलम्बिया यूनिवर्सिटी ने उन्हें एल० एल० डी०की डिगरी प्रदान की। आज विश्व की शान्ति-स्थापन में जो पंडित जी का स्थान है, उसे संसार का प्रत्येक मानव जानता है। थोड़े दिन पूर्व उन्हें भारतरत्न की उपाधि डा० राजेन्द्र प्रसादजी की ओर से प्रदान की गयी है। अपने इस प्रधान मन्त्री के लिये हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह दीर्घायु हों।

सरदार पटेल—सरदार पटेल स्वतन्त्र भारत के डिप्टी प्रधान मन्त्री और रियासती विभाग के प्रधान थे। आप वर्तमान समय में भारत के एक श्रेष्ठ और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। आपका जन्म सन् १८७५ ई० में गुजरात के एक माननीय किसान वंश में हुआ था। आप उच्चकोटि के वकील थे, परन्तु कुछ वर्षों के बाद आप वकालत छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो गये। सन् १६३१ ई० में आप कराची कांग्रेस के प्रधान थे। भारत की रियासतों को भारत सरकार के साथ सम्बन्धित करके भारत की एकता को सुदृढ़ करना आपकी योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है। आपका यह कार्य अद्वितीय है।

मिस्टर जिन्ना—मिस्टर मुहम्मदअली जिन्ना पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल थे। आप १८७६ ई० में कराची में उत्पन्न हुए। बैरिस्ट्री पास करने के पश्चात् आपने बम्बई हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करनी आरम्भ कर दी। आप एक अत्यन्त सफल बैरिस्टर तथा असाधारण योग्यता के राजनीतिज्ञ थे। मुसलमानों के आप एक उच्चकोटि के नेता थे और कायदे-इ-आजम की उपाधि से विख्यात थे। आप पहले कांग्रेस के एक प्रसिद्ध सदस्य थे, परन्तु बाद में कांग्रेस को त्याग मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये। आप आल इण्डिया मुस्लिम लीग के प्रधान थे और आप पाकिस्तान की जान थे। ११ सितम्बर १६४८ को रात के लगभग १० बजे हृदय की गति रुक जाने से आपकी मृत्यु हो गई।

श्री सुभाषचन्द्र बोस—श्री सुभाषचन्द्र बोस 'आजाद हिन्द सेना' के जन्मदाता और सच्चे देशभक्त थे। आपकी जन्मभूमि बंगाल प्रांत है। आप १८९७ ई० में उत्पन्न हुए। १९२० ई० में आपने आइ. सी. एस. की परीक्षा पास की। परन्तु आप लण्डन में ही थे कि आपने उस पद से त्याग पत्र दे दिया और आपने अपने आपको देश सेवा के लिये अर्पण कर दिया। इस देश सेवा के कारण आप कई बार कैद भी हुए। सन् १९३० ई० में आप कलकत्ते के मेयर चुने गये और १९३८ई०में आप कांग्रेस के सभापति चुने गये और १९४१ई०में आप अपने घर में ही कैद किये गये, परन्तु ऐसी चतुराई से वहां से आप निकले कि सरकार को पता भी न लगा कि कब गये और कहाँ गये। मलाया में आपने आजाद हिन्द सेना की रचना की जो सेना अंग्रेजों के विरुद्ध देश स्वतन्त्रता के लिये लड़ती रही। कहते हैं कि १९४५ई० में हवाई जहाज की दुर्घटना में आपकी मृत्यु हो गई। (यद्यपि कई लोगों का विचार है कि आप अभी तक जीवित हैं)। आपकी गणना संसार भर के उच्चकोटि के वक्ताओं में की जाती है। आजाद हिन्द सेना के सैनिक आपका ऐसा मान करते थे जैसे नैपोलियन के सैनिक नैपोलियन का। वे उन्हें नाम लेकर याद नहीं करते, बल्कि नेता जी कहकर पुकारते हैं। आशा है कि इतिहास में आपकी गणना वीरों में होगी।

महामना मदन मोहन मालवीयजी—मदन मोहन मालवीयजी का जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पिताका नाम पं० व्रजनाथ व्यास और माता का नाम मूनादेवी था। मालवीयजी के घर का ऐसा वर्ताव था कि वे बचपन में ही भारतीय संस्कृति के पक्के पुजारी बन गये। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद १८८४ ई० में बी० ए० पास करने के बाद आपने वकालत की परीक्षा भी १८९१ में पास करली। इसके बाद इलाहाबाद हाई कोर्ट में आपकी वकालत खूब चली, किन्तु सब छोड़ छाड़कर देश सेवा में

आप कूद पड़े। १९०२ ई० से लेकर १० वर्ष तक आप उत्तर प्रदेश की धारा सभा के सदस्य रहे। कांग्रेस में आप सदैव सक्रिय भाग लेते थे। यही कारण था कि आप १९०९ ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और १९१० में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद को भी अलंकृत किया। इसके बाद कई वर्षों तक वायसराय की इम्पीरियल कौन्सिल के सदस्य भी रहे। १९१४ ई० में एनी बिसेन्ट द्वारा संचालित 'होमरूल' आन्दोलन में आपने खुल कर भाग लिया। इसके बाद आपने अपने अथक परिश्रम से हिन्दू विश्वविद्यालय का बिल पास करकिर १९१६ ई० को उसका शिलान्यास करवाया। आप सदैव निर्भीक भाव से अंग्रेजी सरकार की आलोचना करते थे। क्योंकि आपका विश्वास था कि देशी सरकार के बिना भारत वासियों का कल्याण असम्भव है। सन् १९१८ ई० में मालवीयजी ने 'रौलट बिल' का बड़े जोरदार शब्दों में विरोध किया। यह रौलट बिल १९१९ ई० में पास हुआ था। उन देशभक्तों की आवाज दबाने के लिये जो भारत की स्वतन्त्रा की माँग करते थे। इस बिलको निष्फल बनाने के लिये मालवीयजी ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में शान्तिपूर्वक सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिये अंग्रेज सरकार ने कई स्थानों पर मार्शल-ला चालू कर दिया। १९१९ ई में जलियाँ वाला बाग की शान्त जनता पर बिना सूचना दिये जनरल डायर ने गोली चला दी, जिसमें हजारों व्यक्तियों को अकाल मृत्यु का शिकार होना पड़ा। इस समाचर से मालवीयजी बड़े दुःखी हुए और विदेशी सरकार को निकालने का प्रयत्न करने लगे। आपके भाषण में वह ओज था कि निरुत्साही व्यक्ति भी आपके कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगते थे। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप जहाँ एक अच्छे वक्ता थे, वहाँ एक अच्छे पत्रकार भी। क्योंकि आपने हिन्दुस्तान, अभ्युदय और लीडर, आदि समाचारों का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की [illegible] कई बार विरोध हुआ। [illegible] पर